ISSN-0971-8397

विकास को समर्पित मासिक

योजना

सितम्बर, 2002

मूल्य: 7 रुपये

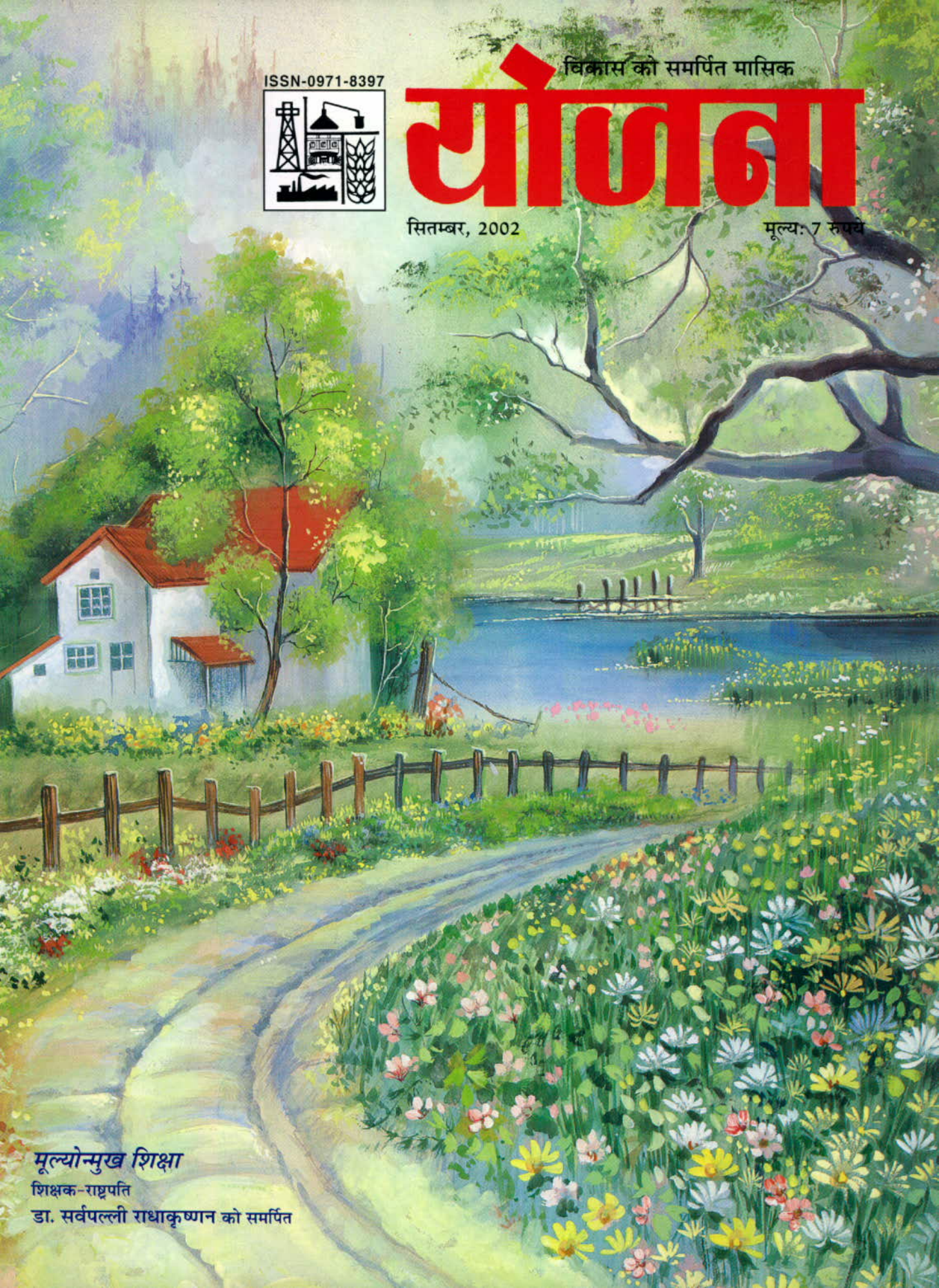

मूल्योन्मुख शिक्षा

शिक्षक-राष्ट्रपति

डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को समर्पित

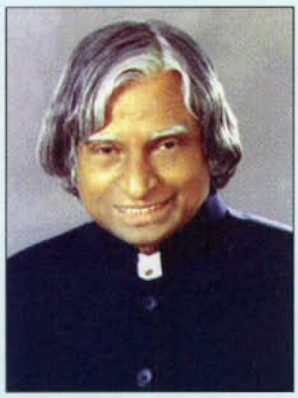

सत्यमेव जयते
राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र

संदेश

मुझे यह जानकर खुशी है कि सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का प्रकाशन विभाग अपनी मासिक पत्रिका 'योजना' का सितम्बर 2002 अंक 'मूल्योन्मुख शिक्षा' पर केन्द्रित कर रहा है और उसे डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को समर्पित कर रहा है।

यह वास्तव में एक सुखद संयोग है कि 5 सितम्बर को मनाया जाने वाला 'शिक्षक दिवस' हमारे पूर्व राष्ट्रपति, डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म-दिवस भी है। वे भारत के एक महान सपूत थे और एक शिक्षक के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान सर्वविदित एवं सराहनीय है।

मैं पत्रिका की सफलता की कामना करता हूं।

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

नई दिल्ली
अगस्त 19, 2002

योजना

वर्ष : 46 अंक 6 सितम्बर, 2002 भाद्रपद-आश्विन, शक-संवत् 1924

प्रधान संपादक
विश्वनाथ रामशेष

कार्यकारी संपादक
अंजनी भूषण

उप संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय
कमरा नं. 538 ए, योजना भवन, संसद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3710473, 3717910
3715481/2510, 2508, 2566

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन एवं वितरण प्रबंधक
प्रकाश चन्द्र आहूजा

आवरण
एम. चक्रवर्ती

इस अंक में

• 'न दैन्यं न पलायनम्'	प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी	2
• इक्कीसवीं सदी में भारत	कर्ण सिंह	6
• मूल्योन्मुख शिक्षा का दर्शन	किरीट जोशी	9
• मूल्योन्मुख शिक्षा—शिक्षकों की भूमिका	स्वामी गोकुलानंद	13
• मूल्योन्मुख शिक्षा कैसी हो ?—साक्षात्कार : श्री मुरली मनोहर जोशी से		16
• मूल्योन्मुख शिक्षा	अनिल विल्सन	17
• निजीकरण की ओर अग्रसर उच्च शिक्षा	उमेश चंद्र अग्रवाल	20
• ओज़ोन-परत का पर्यावरण-संरक्षण में महत्व	शिवेन्द्र कुमार पांडे	25
• प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश कितना सार्थक	रोली खन्ना	29
• भाषिक अस्मिता का संघर्ष और प्रशासनिक हिंदी	हरीश कुमार सेठी	32
• आदिवासी बोलियों के संरक्षण के प्रयास	जुएल ओराम	36
• आधुनिक मैक्रो इकानॉमिक्स के जनक	ए. रामलिंगम	38
• जहां चाह, वहां राह—मध्य प्रदेश का बहुमुखी 'पानी रोको' अभियान	जितेंद्र गुप्त	44
• स्वास्थ्य-चर्चा	—	46
• विकास समाचार	—	48

योजना हिन्दी के अतिरिक्त **असमिया, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगू** तथा **उर्दू** भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। नई सदस्यता के नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें :-

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 टेलीफोन : 6100207, 6105590

चंदे की दरें : वार्षिक : 70 रु.; **द्विवार्षिक :** 135 रु.; **त्रैवार्षिक** 190 रु.; विदेशों में **वार्षिक** दरें : **पड़ोसी देश :** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से सम्बद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

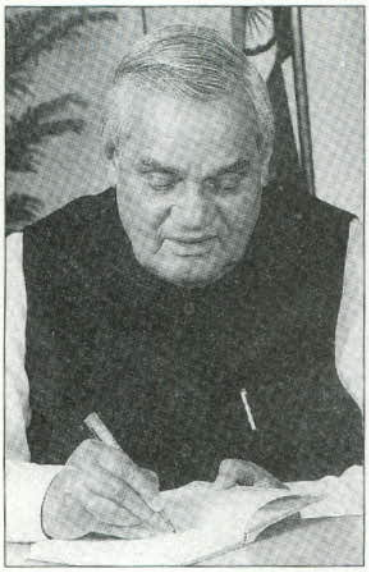

न दैन्यं न पलायनम्

कर्तव्य के पुनीत पथ को
हमने स्वेद से सींचा है,
कभी-कभी अपने अश्रु और
प्राणों का अर्घ्य भी दिया है।

किन्तु, अपनी ध्येय-यात्रा में–
हम कभी रुके नहीं हैं।
किसी चुनौती के सम्मुख
कभी झुके नहीं हैं।

आज,
जब कि राष्ट्र-जीवन की
समस्त निधियां,
दांव पर लगी हैं,
और,
एक घनीभूत अंधेरा–
हमारे जीवन के
सारे आलोक को
निगल लेना चाहता है;

हमें ध्येय के लिए
जीने, जूझने और
आवश्यकता पड़ने पर–
मरने के संकल्प को दोहराना है।

आग्नेय परीक्षा की
इस घड़ी में–
आइए, अर्जुन की तरह
उद्घोष करें;
'न दैन्यं न पलायनम्।'

—प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी

संपादकीय

'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात असली विद्या यानी शिक्षा वह है जो व्यक्ति को बंधनमुक्त करती हो; उसे धन, पद, मान, प्रतिष्ठा के लोभ से ऊपर उठाती हो—शिक्षा के संबंध में हमारी पारंपरिक मान्यता इसी प्रकार की रही है। परंतु आज धनोपार्जन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन गया है। नैतिकता एवं चरित्र-निर्माण जैसे मुद्दों का तो मानो शिक्षा से कोई लेन-देन ही नहीं। आज हम सोचने को विवश हैं कि दोष कहीं हमारी शिक्षा प्रणाली में तो नहीं।

आज मानवता एक नए समाज—विश्व-समाज का रूप ले रही है। जानकारी बढ़ रही है परंतु समझदारी कम हो रही है। संघर्ष और प्रतियोगिता अपने चरम पर हैं। विकसित और विकासशील देशों के बीच खाई चौड़ी हो रही है। हमारी शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो इस हानिकारक एवं विभाजक विरासत को मिलन और सहयोग की एक नई संस्कृति में बदले। ऐसा तभी संभव है जब हम अपनी शैक्षणिक सोच में एक बार फिर आध्यात्मिक तत्व को, नैतिकता और चरित्र-निर्माण से जुड़े पहलू को अधिक महत्व दें। 5 सितम्बर को 'शिक्षक दिवस' के अवसर पर 'मूल्योन्मुख शिक्षा' पर केंद्रित यह अंक हमारे पूर्व शिक्षक-राष्ट्रपति, सर्वपल्ली राधाकृष्णन को समर्पित किया जा रहा है जिनका जन्मदिवस भी 5 सितम्बर है।

जनसंख्या-वृद्धि के बाद पर्यावरण-ह्रास वह दूसरा मुद्दा है जो हमारे नीति-निर्माताओं की चिंता का प्रमुख विषय है। हमारे सुरक्षा-कवच का कार्य करने वाली 'ओजोन परत' का पतला होना अथवा उसमें 'छिद्र' का बढ़ना तभी रोका जा सकता है जब इसके लिए उत्तरदायी क्लोरोफ्लूरो कार्बन (सीएफसी) उत्पादों का उपयोग नियंत्रित करने के कदम सभी देशों द्वारा मिलकर उठाए जाएं और नियमों का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जाए।

सरकार ने एक अहम नीतिगत फैसले के तहत जून, 2002 में प्रिंट मीडिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी प्रदान कर दी। भारतीय समाज में अनेक प्रवृत्तियां गहरे तक जड़ें जमा चुकी हैं जिनका पलक झपकते समाधान संभव नहीं। ऐसे में सरकार का यह कदम भविष्य में क्या रंग लाएगा, इसकी चर्चा सामयिक एवं उद्देश्यपूर्ण है।

प्रशासनिक काम-काज में प्रयुक्त होने वाली हिंदी का स्वरूप क्या हो— इस विषय में अनेक मत हैं। इसमें शंका नहीं कि कार्यालयी हिंदी सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए परंतु भाषा की शुद्धता बनाए रखना भी उतना ही आवश्यक है। व्याकरण-हिंदी का वैशिष्ट्य खोकर प्राप्त होने वाली सरल हिंदी वस्तुत: उसकी अस्मिता पर प्रश्नचिह्न है। 'भाषिक अस्मिता का संघर्ष और प्रशासनिक हिंदी' में विषय पर रोचक एवं गंभीर चर्चा पेश है।

पाठकों की आलोचनात्मक टिप्पणियां हमारा उत्साहवर्धन करती हैं और उनका हम स्वागत करते हैं।

—सम्पादक

आपकी राय

(संदर्भित अंक—जून एवं जुलाई)

संग्रहणीय अंक

'योजना' का जून अंक पढ़ा। यों तो 'योजना' का प्रत्येक अंक पठनीय और संग्रहणीय होता है लेकिन यह अंक बहुत ही विशिष्ट रहा। इसमें यथोचित समय पर आपने यथोचित सामग्री प्रस्तुत की है। आपका छोटा-सा 'सम्पादकीय' भाषा, कला, अनुभव एवं पत्रिका के विभिन्न बिन्दुओं पर अच्छा प्रकाश डालता है।

अंक में अन्य लेखों के अतिरिक्त उस्ताद अमजद अली खां द्वारा लिखित 'जीवन का उल्लास— संगीत' बिल्कुल जीवन की वास्तविक स्थिति को परिलक्षित करता है। सच, संगीत के बिना जीवन शून्य है। 'भर्तृहरि' के शब्दों में 'अच्छे मनुष्य की पहचान यह है कि वह साहित्य, संगीत और कला का आनंद लेना जानता हो, यदि नहीं जानता तो वह बिना सींग-पूंछ का साक्षात पशु है।

संगीत की एक अनोखी विशेषता यह भी है कि वह सुनने में ही दिखाई देता है, उसे सुनने के अलावा अलग से नहीं देखा जा सकता। गायक और वाद्य के आकार-प्रकार से हम परिचित हैं और नहीं भी हैं तो भी संगीत को देखने, और समझने का एक ही तरीका है— उसे सुनना। संगीत हमारे मानसिक स्वभाव को संस्कार में बदलता है और उसे निरंतर परिमार्जित करता रहता है।

—दिलीप कुमार जायसवाल, चिरैयाकोट, मऊ (उ.प्र.)

विकास समाचार अवश्य दें

मैं, 'योजना' का जागरूक पाठक हूं। इस बार जब जुलाई अंक में 'विकास समाचार' नहीं देखा तो मुझे काफी सदमा पहुंचा और मैं पत्र लिखने को विवश हो गया।

मुझे पूर्ण विश्वास है पाठकों की हार्दिक इच्छा को पूरा करने के लिए अगले अंक से 'विकास समाचार' अवश्य देंगे।

संपादकीय में आलेखों की टिप्पणी अच्छी रहती है लेकिन इसके साथ-साथ अगर वर्तमान घटनाक्रम पर भी थोड़ा प्रकाश डाला जाए तो पत्रिका और भी अच्छी हो जाएगी।

—प्रशांत कुमार 'सुमन', सीतामढ़ी (बिहार)

सर्वश्रेष्ठ पत्र

गागर में सागर

सर्वप्रथम जुलाई, 2002 अंक में दी गई 'मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ में' जानकारी के लिए धन्यवाद देता हूं। निश्चय ही इस प्रकार की जानकारी हमारे लिए एवं हमारे जैसे अनेक प्रतियोगियों के लिए सफलता की सूत्र बनेगी। इसमें प्रकाशित लेख 'जिला सरकार के दो वर्ष: एक मूल्यांकन' तथा 'महिलाओं की स्थिति एवं विकास' बहुत ज्ञानवर्धक लगे। मध्य प्रदेश के प्रमुख दर्शनीय स्थलों का संग्रहण बहुत पसंद आया। आशा है आने वाले अंकों में देश के अन्य राज्यों के स्थलों को भी इसी तरह चित्रित करेंगे। इस पत्रिका में आर्थिक, सामाजिक, संवैधानिक एवं विज्ञान के लेखों को इस ढंग से समायोजित किया गया है कि 'गागर में सागर' वाली कहावत पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है।

अनुरोध है कि आने वाले अंकों में देश के विभिन्न भागों की संस्कृति के संदर्भ में एक नया स्तंभ जोड़ें ताकि पाठक संपूर्ण देश से परिचित हो सकें।

—संजीव गुप्ता, इंदौर (म.प्र.)

युवा वर्ग को विशेष लाभ

मैं 'योजना' का नियमित पाठक हूं। इसके लेखों से विषय पर हमारा दृष्टिकोण व्यापक एवं स्पष्ट होता है, साथ ही जानकारी का दायरा भी विस्तृत होता है जिससे युवा-वर्ग को विशेष लाभ होता है।

सरकार की योजनाओं एवं अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं को जन-जन तक विश्वसनीयता के साथ पहुंचाने में यह पत्रिका महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

जून अंक में उस्ताद अमजद अली खां का लेख 'जीवन का उल्लास—संगीत' बेहद ही रोचक लगा। संगीत मेरा शौक रहा है। विशेषकर आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के बाद से हर व्यक्ति, चाहे वह गांव का हो या शहर का, अपने-आपको समृद्ध बनाने के लिए उधार लिए रास्तों और तरीकों को अपनाने में नहीं हिचक रहा है। फलत: मन की विवशता, मानसिक तनाव एवं अवसाद के क्षणों में अकेला संगीत ही शायद ऐसे लोगों का समाधान है। संगीत के 'सुर' एवं 'ताल' ऐसी शक्ति से सजे होते हैं कि हमारा सारा तनाव छू-मंतर हो जाता है और संगीत से हमारी शारीरिक प्रणाली धीरे-धीरे अपने-आप सुचारू ढंग से कार्य करने लगती है, मन का शुद्धिकरण हो जाता है।

—ऋषि रंजन गोयल, मिर्जापुर (उ.प्र.)

लोक प्रशासन

By Atul Lohiya

(A person who believes in hard work and scientific approach)

लोक प्रशासन ही क्यों?

क्योंकि आप एक लोक प्रशासक बनने जा रहे हैं।

- परीक्षा की चुनौतियों एवं बदलती परिस्थितियों के अनुरूप विषय
- इसकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि जारी
- भविष्य में सामान्य अध्ययन के अनिवार्य भाग के रूप में लोक प्रशासन को शामिल किए जाने की अधिकतम संभावना
- वर्तमान समय में भी **अंकों के खेल** में सबसे आगे – आपका अध्ययन 600 अंकों के लिए, लेकिन आप हल कर सकेंगे एक हजार से अधिक अंकों के प्रश्न (वैकल्पिक विषय - 600 + निबंध - 200 + G.S. (Polity) - 90 + G.S. (Social Problem) + G.S. Current Affairs + साक्षात्कार
- और अब **परिणाम में भी सबसे आगे** – IAS 2001 के TOP-20 में सर्वाधिक (7) लोक प्रशासन से
- लोक प्रशासन न पढ़ें, तब भी उसका 60-70 प्रतिशत सिलेबस सामान्य अध्ययन के भाग के रूप में हर परीक्षार्थी के लिए पढ़ना अनिवार्य।
- प्रत्येक परीक्षार्थी द्वारा जिज्ञासावश भी अधिकांश सिलेबस का अध्ययन, जैसे - भर्ती, प्रशिक्षण, अलग कमेटी, वेतन एवं सेवा शर्तें आदि।

क्या है कोई विकल्प इससे बेहतर?

लोक प्रशासन का चयन - उचित निर्णय और व्यावसायिक दृष्टिकोण

तो आइये करें - लोक प्रशासन के अध्ययन की शुरूआत, 'अतुल लोहिया' के साथ।

अतुल लोहिया ही क्यों?

क्योंकि केवल हम कराते हैं लोक प्रशासन का सम्पूर्ण एवं समग्र अध्ययन।

- **अध्यापन की शैली** - विशिष्ट व वैज्ञानिक (दो घंटे से लेकर 200 घंटे तक एक कड़ी के रूप में पढ़ाने का दावा)
- **नोट्स** - वैज्ञानिक तरीके से तैयार पूर्णतः संशोधित व परिमार्जित Pre. और Mains के लिए अलग-अलग। संदर्भ : 80 से 85 स्रोत।
- केवल हमारे नोट्स से UPSC (Pre.) और UPPCS (Pre.) 2001 एवं 2002 में लगभग 90 प्रतिशत प्रश्न आए।
- **Revision Notes** & चार्ट के रूप में उपलब्ध कराने वाले एकमात्र शिक्षक।
- हम देते हैं प्रत्येक क्लास का 40 प्रतिशत समय प्रश्न अभ्यास में और शेष समय **विषय की बेहतर समझ एवं छात्रों की परिपक्व सोच** के विकास में।
- मुख्य परीक्षा के पहले प्रत्येक छात्र के लिए व्यक्तिगत रूप से पूरे सिलेबस का रिवीजन
- इसके अतिरिक्त आप प्राप्त कर सकते हैं – प्रतियोगी वातावरण, कुशल परिचर्चा समूह, और भी...

'अतुल लोहिया'

शिक्षक, मार्गदर्शक और मित्र भी

*There's never a **Wrong** time*
*To do the **Right** thing*

Admission Open

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध

MAINS - 2,000/-

MAINS + PRE. - 3,000/-

M.P. P.S.C. (Mains) के लोक प्रशासन (द्वितीय प्रश्न पत्र) की निःशुल्क तैयारी

AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

FLAT No. 301, 3rd FLOOR, A-14, BHANDARI HOUSE, COMMERCIAL COMPLEX, BEHIND BATRA CINEMA, DR. MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009 • CELL.: 9810651005

इक्कीसवीं सदी में शिक्षा

○ कर्ण सिंह

बेमिसाल विनाश और अकल्पनीय प्रगति; मानव इतिहास का निर्दयतम जनसंहार और मानव कल्याण में उल्लेखनीय प्रगति; अभूतपूर्व विनाशक हथियारों का उदय और अंतरिक्ष की सृजनात्मक खोज— इन परस्पर विरोधी परिदृश्यों के बीच जब हम पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में आगे बढ़ रहे थे, हमने स्वयं को धरती पर मानव जाति के लंबे और कठिन इतिहास के दौर में निर्णायक चौराहे पर खड़ा पाया। हमारे अपने जीवन-काल में अब अधिक बेहतरी या बुराई होने की अधिक गुंजाइश नहीं रह गई है। जहां वैज्ञानिक प्रयोगों ने करोड़ों लोगों के जीवन-स्तर में आशातीत सुधार किए हैं, वहीं मानवीय समस्याओं ने विश्वव्यापी रूप धारण किया है और करोड़ों लोगों को दो वक्त की रोटी तक उपलब्ध नहीं होती। परमाणु परीक्षणों की शृंखला और परमाणु कचरे का निपटान; विश्व तापमान में वृद्धि का बढ़ता खतरा; ओजोन कवच का ह्रास; वन-विनाश और वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं का बड़े पैमाने पर संहार; वायु एवं जल प्रदूषण तथा खाद्य कड़ी की विषाक्तता; मादक पदार्थों का उपयोग और छूत की बीमारियों का तेजी से फैलाव—ये ऐसी समस्याएं हैं जिनका सामना संपूर्ण मानव जाति को करना पड़ रहा है और जिनका समाधान विश्व स्तर पर मिल-जुलकर ही किया जा सकता है।

अब यह स्पष्ट है कि मानवता एक नए समाज का रूप ले रही है। यह परिवर्तन पहले के उस परिवर्तन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है जब उसने गुफा से वन, वन से घुमंतू कृषक और औद्योगिक जीवन; और फिर उत्तर-औद्योगिक समाज की ओर कदम बढाए थे। आज हम जो देख रहे हैं वह है वर्तमान समाज का विश्व समाज में रूपांतरण। यह अलग बात है कि हम उसके इतने समीप हैं कि उसका महत्व नहीं समझ पाते। आज हम ऐसे युग में हैं जब भविष्य हमारे सामने आकर खड़ा हो गया है और हम इस बात से अभिज्ञ हैं कि भूतकाल लुप्त हो चुका है। अत: हम वर्तमान की चुनौतियों और परिवर्तनों का सामना करने में स्वयं को असहाय पा रहे हैं। चाहे राजनीतिक घटनाएं हों या आर्थिक निर्णय; व्यापारिक गतिविधियां हों या औद्योगिक; कंप्यूटर प्रौद्योगिकी हो अथवा अंतरिक्ष की खोज, भोजन अथवा वस्त्र की आदतें हों या सर्वव्यापी संगीत की ताल— सबने राष्ट्रीय सीमाओं द्वारा निर्धारित कृत्रिम सीमाओं को स्वीकार करना बंद कर दिया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से प्रेरित होकर वे अपनी अभिव्यक्ति में विश्वव्यापी हो गए हैं। हम आज ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जो छोटी होती जा रही हैं, जिसमें संघर्ष और प्रतियोगिता की हानिकारक विरासत और विकसित एवं विकासशील देशों के बीच की बढ़ती खाई को मिलन और सहयोग की एक नई संस्कृति के लिए स्थान बनाना होगा। तभी इस नई सहस्त्राब्दी के समृद्ध वादों को हम उस संघर्ष और अराजकता में बदलने से रोक सकेंगे जिसने विश्व के अनेक भागों को अपनी लपेट में ले रखा है।

आज हमारे सामने चिंता के मुख्य विषय हैं विकासशील देशों की तेजी से बढ़ती जनसंख्या, पर्यावरण को उत्पन्न खतरा और वर्तमान स्थिति से निपटने में शैक्षिक प्रक्रिया की भूमिका। जनसंख्या वृद्धि की संपूर्ण समस्या की 1994 में कड़ी समीक्षा की गई—1974 में बुखारेस्ट में हुए विश्व

आज हम ऐसे युग में हैं जब भविष्य हमारे सामने आकर खड़ा है और हम इस बात से अभिज्ञ हैं कि भूतकाल समाप्त हो चुका है। अत: हम वर्तमान की चुनौतियों और परिवर्तनों का सामना करने में स्वयं को असहाय पा रहे हैं। हमें उस मार्ग को अपनाना चाहिए जो प्रतियोगिता की ओर नहीं, सहयोग की ओर ले जाता हो; अनबन की ओर नहीं, सामंजस्य की ओर ले जाता हो; भोगवाद की ओर नहीं, संयम की ओर ले जाता हो। अंतिम विश्लेषण में केवल शिक्षा ही यह कार्य कर सकती है।

जनसंख्या सम्मेलन के बीस वर्ष बाद। पिछले कुछ वर्षों के दौरान पर्यावरण के विषय में काफी कुछ कहा और लिखा गया है। यह दिखाने के लिए कि पिछले कुछ दशकों के दौरान हमने अपनी आर्थिक प्रगति की क्या कीमत चुकाई है, इन बातों को 1992 में हुए रियो-डि-जेनिरो सम्मेलन में प्रभावशाली ढंग से दुहाराया गया। **मनुष्य** और **प्रकृति** पर 1986 में जारी बहु-धर्मी 'असीसी घोषणा' इस महत्वपूर्ण समस्या पर विभिन्न परंपराओं के धार्मिक नेताओं के दृष्टिकोण का एक उपयोगी दस्तावेज है। पर्यावरण के साथ मनुष्य की अनियंत्रित और अंधाधुंध छेड़छाड़ के कारण वह नाजुक पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ गया है जिसके कारण धरती-माता (भारतीय परंपरा में 'भावनी वसुंधरा' और ग्रीक (यूनानी) में 'गेआ') करोड़ों वर्षों के दौरान चेतना के विकास के लिए एक अनुपम कुठारी (कड़ी परीक्षा लेने का साधन) बनी। प्रकृति के फिर से इस्तेमाल न हो सकने वाले संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से भयंकर विनाश हुआ है और अगर इसे जारी रहने दिया गया तो ऐसी पारिस्थितिक तबाही हो सकती है कि शताब्दी के अंत तक धरती पर मानव का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाए।

हमारे पास इस समस्या के समाधान के लिए बौद्धिक या आर्थिक संसाधन उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक सफलता और औद्योगिक पटुता ने हमें इन चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य भी प्रदान की है। लेकिन जिस बात की कमी है वह है ऐसा करने की समझदारी और सहानुभूति की। जानकारी बढ़ रही है लेकिन समझदारी कम हो रही है। अगर हमें विनाश की ओर बढ़ने की वर्तमान प्रवृत्ति को पलटना है तो हमें इस दशक के अंत से पहले ही इस बढ़ती खाई को पाटना होगा। यहां शिक्षा अपने व्यापक अर्थों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। दुर्भाग्यवश हमारी संपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था उन विश्वासों पर आधारित है जो परमाणु-काल और वैश्वीकरण से पहले की अनुभूतियों से प्रवाहित हुए थे। परिणामस्वरूप वे विचारों की उस रूपावली को प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं जो मानव-कल्याण और मनुष्य जाति को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। प्राचीन कट्टरवादिता और पुराना दिशानुकूलन नई पीढ़ी को विश्व की उस बुनियादी एकता से परिचित नहीं करा पा रहे हैं। जिसमें उन्होंने जन्म लिया है। वास्तव में देश के अन्य समुदायों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देकर वे विश्व-एकता के विकास में बाधक बन रहे हैं।

आश्चर्यजनक संचार प्रौद्योगिकी, जो आज विश्व भर में छाई हुई है, शायद ही कभी अपनी जबर्दस्त क्षमता का उपयोग 'वसुधैव कुटुम्बकम' के महान आदर्श के प्रचार और अधिक सहानुभूतिपूर्ण चेतना के विकास के लिए करे। इसके विपरीत सूचना माध्यमों में हिंसा और डर, निर्दयता और हत्याकांड, अनियंत्रित उपभोक्तावाद और निर्लज्ज अनाचार की खबरें छाई रहती हैं, जो न केवल युवकों की चेतना को विकृत करती हैं बल्कि मानवता की तकलीफ और पीड़ा के प्रति हमारी संवदेनशीलता को भी कुंठित करती हैं। इसलिए जिस बात की ओर अविलम्ब ध्यान देने की जरूरत है वह है हमारी शैक्षणिक और संचार नीतियों में आमूल-चूल परिवर्तन। इस बात की जरूरत है कि हम सावधानीपूर्वक विश्व-स्तर पर कार्यक्रम तैयार करें जो स्पष्ट और असंदिग्ध रूप से इस बात पर आधारित हो कि मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए सृजनात्मक और सहानुभूतिपूर्ण विश्व-चेतना आवश्यक है।

दुर्भाग्यवश हमारी संपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था उन विश्वासों पर आधारित है जो परमाणु-काल और वैश्वीकरण से पहले की अनुभूतियों से प्रवाहित हुए थे। परिणामस्वरूप वे विचारों की उस रूपावली को प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं जो मानव-कल्याण और मनुष्य जाति को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

हमें अपनी शैक्षणिक सोच में एक बार फिर आध्यात्मिक आयाम को अधिक महत्व देना होगा। हमारे कल्पनाशील शैक्षिक विचारकों ने शिक्षा की अधिक मानवीय और पूर्ण पद्धतियों का प्रतिपादन किया है। अकेले भारत में ही अनेक महापुरुषों यथा— संत-दार्शनिक श्री अरविन्द, नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सत्य एवं अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी और सुप्रसिद्ध विचारक जे. कृष्णामूर्ति ने शिक्षा के अपने सिद्धांत विकसित किए और उन्हें व्यवहार में लाए। रचनात्मक शिक्षा के ये और विश्व में अन्यत्र हुए प्रयोग देश की शिक्षा-नीति निर्धारित करने में हमारे लिए प्रेरणादायक और मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

हममें यह साहस होना चाहिए कि हम विश्व को ध्यान में रखकर सोचे, परंपरागत सोच से हटें और साहस के साथ अज्ञात में प्रवेश करें। हमें अपने आंतरिक और बाह्य संसाधन जुटाने होंगे और पारस्परिक विनाश पर नहीं, पारस्परिक कल्याण पर आधारित विश्व के निर्माण के लिए कार्य करना होगा। मानव जाति के अस्तित्व को बचाने और उसके कल्याण के लिए वचनबद्ध विश्व-नागरिक के रूप में हमें विश्व-भर के वयस्कों और बच्चों के लिए एक ऐसा शिक्षा कार्यक्रम तैयार करना होगा, जो उनके सामने वैश्वीकरण की वास्तविकता उजागर करे और उनके दिलों को दुखियों और पीड़ितों की आवाज सुनने में सक्षम बनाए। समय कम है क्योंकि विश्व समाज के उदय के साथ-साथ कट्टरवादिता और धर्मान्धता, शोषणीय एवं भयावह अशुभ शक्तियां भी सक्रिय हो रही हैं।

अत: आइए, हम बिना देर किए एक नई शैक्षणिक सिद्धांत-नीति शुरू करें जो निम्नलिखित बातों पर आधारित हो :

(क) यह धरती, जिस पर हम रहते हैं और जिसके हम सब नागरिक हैं, एक अकेली, जीवन्त और धड़कती हुई इकाई है; अंतिम विश्लेषण में मानव-जाति आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़ा विशाल परिवार— 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है जैसा कि वेदों में कहा गया है; जाति और धर्म, राष्ट्रीयता और विचारधारा, लिंग एवं लैंगिक व्यवहार, आर्थिक और सामाजिक हैसियत संबंधी मतभेद यद्यपि अपने-आप में महत्वपूर्ण हैं, तथापि उन्हें विश्व एकता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

(ख) धरती की पारिस्थितिकी की, यानी उसकी वनस्पतियों, जीव-जंतुओं, आदि कि अनाप-शनाप दोहन से होने वाले विनाश से रक्षा की जानी चाहिए और इसे भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और समृद्ध किया जाना चाहिए। खपत का अधिक न्यायपूर्ण ढांचा तैयार किया जाना चाहिए जो अनियंत्रित उपभोक्तावाद की बजाय सीमित विकास की परिकल्पना पर आधारित हो।

(ग) घृणा और कट्टरता, मूलवाद और धर्मान्धता, लालच और ईर्ष्या चाहे वह व्यक्तियों में हो अथवा समुदायों या राष्ट्रों में एक कमजोर भावना है जिस पर काबू पाया जाना चाहिए। नई विश्व-चेतना में प्रवेश करते समय प्रेम और सहानुभूति, सहिष्णुता और सहृदयता, मैत्री और सहयोग जैसी भावनाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विश्व के महान धर्मों को अब प्रभुत्व के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध संघर्ष नहीं करना चाहिए बल्कि उन आकांक्षाओं को, जो उन्हें एक-दूसरे से जोड़ती हैं, प्राप्त करने के लिए सहयोग में वृद्धि की जानी चाहिए। विभिन्न धर्मों के बीच आपसी बातचीत को निरंतर बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि उन्हें विभाजित करने वाली धार्मिक हटधर्मिता और एकान्तिकता को निरूत्साहित किया जा सके।

(घ) नई सर्वव्यापी शिक्षा में मानव व्यक्तित्व के बहुआयामी स्वरूप— भौतिक, बौद्धिक, सौंदर्यपरक, भावनात्मक और आध्यात्मिक को स्वीकार किया जाना चाहिए और एकीकृत मनुष्य सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए कार्य करना चाहिए।

(ङ) मूल्यों अथवा आदर्शों को बढ़ावा देने वाली शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इनमें शामिल हैं— पर्यावरण संबंधी मान्यताएं, छोटे परिवार का मानक, सभी धर्मों का सम्मान, अधिकार के साथ उत्तरदायित्व की भावना, लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के साथ कर्तव्य-भावना।

(च) विश्व भर में सन् 2010 तक निरक्षरता उन्मूलन के लिए विशाल और संयुक्त अभियान चलाए जाने की जरूरत है और इसके लिए प्राथमिकता के आधार पर संसाधन जुटाए जाने चाहिए।

(छ) महिला साक्षरता की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस दिशा में विकासशील देशों में विशेष कार्य करने की जरूरत है ताकि पिछली विकृतियों को समाप्त किया जा सके और महिलाओं को शक्ति प्रदान करने का कार्य, जो एकीकृत और सामंजस्यपूर्ण समाज के लिए जरूरी है, किया जा सके।

विश्व की सभी भाषाओं में इस तरह की शैक्षणिक सामग्री प्रस्तुत करने के बाद हमें समय के साथ-साथ ऐसी वितरण व्यवस्था भी बनानी चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि यह सामग्री विश्व के सभी देशों में पहुंचे। यूनेस्को के नेतृत्व में हमें सभी संस्थाओं, जैसे— संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय, दि क्लब ऑफ बुडापेस्ट, दि क्लब ऑफ रोम (जिनका प्रकाशन 'दि फर्स्ट ग्लोबल रिवाल्युशन' विशेष रूप से प्रासंगिक है) से सहयोग लेना होगा। हमें इस कार्य में राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थाओं और निजी शैक्षणिक संगठनों को भी शामिल करना होगा जो वर्तमान शैक्षिक कार्यक्रमों को विश्वव्यापी आयाम प्रदान करे। अगर जीवनपर्यन्त विश्वव्यापी शिक्षा की इस पूरी अवधारणा को सफल बनाना है तो हमें सूचना माध्यमों के जबर्दस्त संसाधनों— फिल्म और टेलीविजन, रेडियो और मुद्रित शब्द का रचनात्मक ढंग से उपयोग करना होगा। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि इस तरह का प्रयास कोई असंभावी दुःस्वप्न जैसा नहीं है। अगर इस परमाणु युग में मानवता को इसकी स्वयं की प्रौद्योगिक पटुता से बचाए रखना है और विश्व समाज की ओर सकुशल आगे बढ़ना है तो यह अविलम्ब ध्यान देने योग्य आवश्यकता है।

दशकों पहले मैंने जब पहली बार चांद से लिए गए उस आश्चर्यजनक चित्र को देखा था, जो हमारी धरती को वैसे दिखाता है जैसी वह है— प्रकाश और जीवन का एक सूक्ष्म कण; इतनी सुंदर लेकिन इतनी भंगुर; बाह्य अंतरिक्ष के कालेपन के विरूद्ध चेतना की ज्वाला से जाज्वल्यमान—तो मैं उस पर मुग्ध हो गया था। इस धरती ने, जिसे अनेक संस्कृतियां 'धरती मां' कहकर पुकारती हैं, करोड़ों वर्ष पहले सृष्टि के आदियुगीन समय से लेकर आज तक निरंतर अपनी चेतना का विकास किया है। अब भूमिका के नाटकीय उलट-फेर में उन धब्बों को ठीक करने के लिए जो हमने अपने अहंकार में उस पर लगाए हैं, और उन सभी प्राणियों के कल्याण और संरक्षण के लिए जो आज उस पर रहते हैं या आगामी सहस्त्राब्दी में उस पर रहेंगे, हमें धरती का पोषण करना होगा। हममें से जो लोग भविष्य की शिक्षा के काम से जुड़े हैं, उनके लिए तो निश्चित तौर पर मार्गदर्शक सिद्धांत यही होना चाहिए।

हम नियति के चौराहे पर खड़े हैं; हमें उस मार्ग को अपनाना चाहिए जो प्रतियोगिता की ओर नहीं, सहयोग की ओर ले जाता हो, अनबन की ओर नहीं, सामंजस्य की ओर ले जाता हो, भोगवाद की ओर नहीं, संयम की ओर ले जाता हो। अंतिम विश्लेषण में केवल शिक्षा ही यह कार्य कर सकती है। ❑

(लेखक डा. कर्ण सिंह न्यूयार्क स्थित 'टेम्पल ऑफ अंडरस्टैंडिंग' नामक वैश्विक अंतरधर्म संस्था की भारतीय शाखा के अध्यक्ष हैं।)

मूल्योन्मुख शिक्षा का दर्शन

○ किरीट जोशी

सर्वप्रथम मूल्योन्मुख शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

एक विचार है कि कोई भी जीवन-मूल्य अपने स्वभाव में सापेक्ष और व्यक्तिपरक होता है। इसके आधार पर तर्क दिया जाता है कि हर व्यक्ति को अपने मूल्य निर्धारित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा शिक्षा संस्थानों को केवल वस्तुनिष्ठ ज्ञान की शिक्षा देने तक सीमित रहना चाहिए।

कुछ शिक्षाविदों की राय में मूल्यों को यदि निर्धारण करने योग्य माना भी जाए तो भी उनकी शिक्षा नहीं दी जा सकती। इसलिए विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर मूल्योन्मुख शिक्षा का समावेश करने की कोई तुक नहीं बनती।

इसके विपरीत एक राय यह है कि सामाजिक सभ्यता की दिशा समाज में प्रचलित मूल्यों द्वारा तय होती है। इसलिए शिक्षा-प्रणाली में मूल्यों पर बल देने की आवश्यकता है।

हाल के दिनों में नवयुवकों में मादक पदार्थों के सेवन की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए भी कहा जाता है कि ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो युवकों में आत्म-नियंत्रण, अनुशासन तथा आचार-विचार एवं आदत की शुद्धता का संवर्धन करने में सहायक हो।

जब हम मूल्यों की बात पर विचार करते हैं और शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से इसका अध्ययन और अनुसरण कराना चाहते हैं तो मूल्यों की शिक्षा नहीं, 'मूल्योन्मुख' शिक्षा देना और उसमें 'वांछित' तथा 'अवांछित' का पाठ पढ़ाने की बजाय उसकी अनुभूति कराना आवश्यक हो जाता है।

सापेक्षता और भावनात्मकता

यदि हम किसी समाज के मूल्यों का अवलोकन करें तो देखेंगे कि उनका विकास अनेक मानक व्यवहारों के रूप में हुआ है। इन्हें आरोही क्रम में रखा जा सकता है।

किसी समूह का मानक स्थापित करते समय कई बातों पर ध्यान दिया जाता है। सबसे प्रथम तो यह कि कोई नैतिक-मूल्य क्या व्यावहारिक उपयोगिता की कसौटी पर सफल होता है। इसे उपयोगितावाद की संज्ञा दी जाती है। इसमें किसी व्यवहार की परीक्षा उसके परिणाम से की जाती है। परिणाम समाज के ज्यादा से ज्यादा लोगों के लिए सुखद है तो उसे अच्छा माना जाता है।

एक तर्क यह भी है कि वस्तुनिष्ठ उपयोगितावाद किसी मूल्य-प्रणाली के विकास-क्रम में काफी बाद की कड़ी है। इसके आधार पर जो सुझाव और मानक प्रस्तुत किए जाते हैं उन्हें व्यक्तिगत आवश्यकता या अधिमान्यता के आधार पर तय किए जाने वाले आचार-व्यवहार की तरह सापेक्ष या व्यक्तिपरक सुझाव की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

इसी उच्च स्तर पर निर्धारित नैतिक मूल्यों से अच्छे और बुरे के बारे में समग्रता और वस्तुनिष्ठता की अवधारणा तय होती है। इसी के आधार पर प्रेम, न्याय और विवेक जैसी अवधारणाओं को नैतिक मूल्यों के लिए अपरिहार्य बताया जाता है पर इसमें भी विवाद है। किसी व्यक्ति का 'पूर्ण न्याय' व्यवहार में एक 'सार्वभौमिक अन्याय' साबित हो सकता है। पुनश्च, प्राय: 'न्याय', 'प्रेम' का शत्रु बन जाता है इसलिए पूर्ण और वस्तुनिष्ठ सहमति से यह कह पाना कठिन हो जाता है कि अमुक कार्य बिल्कुल सही है या कि यह पूरी तरह 'प्रेम' और 'न्याय' दोनों के अनुकूल है।

मूल्योन्मुख शिक्षा के लिए यह चर्चा बड़े महत्व की है। मूल्योन्मुख शिक्षा में यदि विशिष्ट या अधिमान्य कसौटी को अपनाकर किसी विशेष क्रिया-कलाप या मूल्य-व्यवस्था को अपनाने की सिफारिश की जाती है तो व्यक्तिपरकता और सापेक्षता के तर्क के आधार पर उसका सशक्त विरोध हो सकता है लेकिन यदि वही प्रस्ताव सद्भाव बढ़ाने की भावना के साथ रखा जाए तो मूल्योन्मुख शिक्षा का पक्ष मजबूत होता है।

इसका अर्थ है कि मूल्यों को सिखाने की बजाय मूल्योन्मुख शिक्षा देने का प्रस्ताव बेहतर है। मूल्यों की शिक्षा देने का काम 'यह करो-यह मत करो' की सीख देने में ही समाप्त हो जाएगा। इस तरह की सीख का कोई ठोस आधार नहीं बन पाएगा। इसकी जगह यदि हमारा उद्देश्य शिक्षा-व्यवस्था में ऐसी स्थितियों का निर्माण करना है जो सौहार्द्र की वृद्धि में सहायक हो और सौहार्द्र का सृजन करे तथा यदि प्रयास यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं, आवश्यकताओं और अहम से ऊपर उठकर सोचने की प्रेरणा और साधन उपलब्ध कराया जाए ताकि उस व्यक्ति की सोच धीरे-धीरे व्यक्तिपरकता से ऊपर उठे तो ऐसी शिक्षा के लिए दार्शनिक और शैक्षणिक तर्क रखे जा सकते हैं। इस प्रकार की शिक्षा को 'मूल्योन्मुख शिक्षा' का नाम देना ठीक रहेगा।

मूल्योन्मुख शिक्षा को सद्भावना का वातावरण बनाने की दिशा में बिना-शर्त प्रयास को बढ़ावा देने वाली एक प्रगतिगामी और गवेषणात्मक विकास-प्रक्रिया कहा जा सकता है। यह शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे और बुरे का निर्धारण करने की स्वतंत्रता देती है पर इसकी मान्यता यह है कि व्यक्ति सद्भाव चाहता है।

निष्कर्ष यह है कि जब हम मूल्यों की बात पर विचार करते हैं और शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से इसका अध्ययन और अनुसरण कराना चाहते हैं तो मूल्यों की शिक्षा नहीं, 'मूल्योन्मुख' शिक्षा देना और उसमें 'वांछित' तथा 'अवांछित' का पाठ पढ़ाने की बजाय उसकी अनुभूति कराना आवश्यक हो जाता है।

सम्मिलित शिक्षा

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में हमारा ध्यान केवल मानसिक विकास पर केंद्रित है। इसीलिए हम केवल ऐसे गुणों के विकास पर ध्यान देते हैं जो किसी विषय की जानकारी, किसी पुस्तक की जानकारी या किसी परीक्षा में सफलता से संबंध रखते हैं। इसके विपरीत सम्पूर्ण शिक्षा का तात्पर्य ऐसे गुणों और मूल्यों के विकास की समाकलित और साथ-साथ चलने वाली ऐसी विकास-प्रक्रिया से है जो शिक्षा, जीवन की शिक्षा, मानसिक शिक्षा, मनो और आध्यात्मिक शिक्षा के लिए उपयोगी है।

मूल्योन्मुख शिक्षा को सद्भावना का वातावरण बनाने की दिशा में बिना-शर्त प्रयास को बढ़ावा देने वाली एक प्रगतिगामी और गवेषणात्मक विकास-प्रक्रिया कहा जा सकता है। यह शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे और बुरे का निर्धारण करने की स्वतंत्रता देती है पर इसकी मान्यता यह है कि व्यक्ति सद्भाव चाहता है।

शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में शामिल किए जाने वाले मूल्यों का संबंध स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति, डील-डौल, आभा और सुंदरता से होता है। भावनात्मक शिक्षा या जीवन की शिक्षा के क्षेत्र में साध्य मूल्यों का संबंध कीर्ति, वीरता और संगीत से है। तार्किक विकास के क्षेत्र में जो मूल्य ग्रहणीय माने जाते हैं उनका संबंध पूर्णत: निष्पक्षता, सत्य की खोज, शांति तथा यथासंभव मेल से है। सौंदर्यबोध के विकास से संबंधित मूल्यों में सुंदरता और गहनतम सौंदर्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति से जुड़े सृजनात्मक आनंद की कल्पना शामिल होती है।

सम्मिलित मूल्योन्मुख शिक्षा शोध का विषय है। इस शोध के परिणाम दर्शाते हैं कि ज्ञान, इच्छा, संगति और कौशल का विकास साथ-साथ करने की आवश्यकता है। इन सब बातों का विकास ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति के अंदर स्वाभाविक रूप से ऐसी व्यवस्था का गठन हो जाए जिसमें आचार-व्यवहार की सर्वोच्च प्रक्रिया निरन्तर गतिमान रहे।

नैतिकता और आध्यात्मिकता

मूल्योन्मुखी शिक्षा के किसी भी ठोस दर्शन में नैतिकता और आध्यात्मिकता की अवधारणा को स्पष्ट किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि दोनों अलग होते हुए भी परस्पर संबंधित हैं तथा दोनों को धर्म से अलग करके देखने की आवश्यकता है। पुनश्च, भारतीय शिक्षा-प्रणाली के संदर्भ में इस विषय का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'पूर्णत: सरकारी धन से चलने वाली शिक्षा संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी' और 'सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त या सरकारी सहायता पाने वाले किसी शैक्षणिक संस्थान में उपस्थिति लगाने वाले किसी व्यक्ति के लिए उस संस्था में दी जाने वाली किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा में भाग लेने या उससे लगे किसी स्थान में किसी प्रकार की धार्मिक प्रार्थना में शामिल होना अनिवार्य नहीं किया जा सकता, जब तक कि उस व्यक्ति ने स्वयं उसकी सहमति न दी हो और यदि वह व्यक्ति नाबालिग है तो उसके संरक्षक ने सहमति न दी हो।' भारतीय चिंतन में नैतिकता और

आध्यात्मिकता के बीच स्पष्ट अंतर दिखाया गया है। दोनों के अलग-अलग अर्थ और अभिप्राय हैं।

'नैतिकता' शब्द का अभिप्राय है व्यक्ति द्वारा एक प्रकार की आंतरिक प्रेरणा और दिशा-निर्देशन में अपनी इच्छाओं और मनोवेगों पर नियंत्रण और पूर्वाधिकार प्राप्त करने का सतत प्रयास किया जाना। इसकी प्रेरणा और इसका दिशा-निर्देशन समाज में उस व्यक्ति की स्थिति और कर्तव्यों को ध्यान में रखकर या किसी आदर्श के बारे में निर्धारित या प्रकट नियमों से निर्धारित मानक-व्यवहारों से प्राप्त होता है। नैतिकता को आध्यात्मिकता की दिशा में प्रयास की तैयारी भी माना जाता है। इसके विपरीत आध्यात्मिकता किसी व्यक्ति द्वारा बिना किसी संशय के कल्पित परमपूर्ण की प्राप्ति के प्रयास के साथ शुरू होती है। इसके अलावा जहां नैतिकता का संबंध कर्तव्य क्षेत्र से है, वहीं आध्यात्मिकता ऐसे ज्ञान की खोज है जो सभी बंधनों से मुक्ति दिलाने वाला है—''सा विद्या या विमुक्तये।'' कहा भी जाता है कि सच्चा ज्ञान बौद्धिक ज्ञान नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्ञान है।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का अनुशीलन हर व्यक्ति कर सकता है—वह चाहे किसी भी धर्म का अनुयायी हो या उसका किसी भी धर्म में विश्वास न हो। नैतिकता और आध्यात्मिकता को धर्म में प्रचलित कर्मकांडों से मुक्त रखा जा सकता है। इसके अलावा ये दोनों बातें व्यक्ति के अपने निर्णय और आध्यात्मिक अनुभव पर निर्भर करती हैं। इनके लिए किसी अन्य से आदेश नहीं मिलता। आध्यात्मिकता का संबंध केवल आचरण के पहलू से नहीं है। इसमें सभी कार्य शामिल हैं। इसमें चेतना के उत्तरोत्तर परिष्कार के तरीके से कार्यों के सभी पहलुओं में पूर्ण संगति स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। इसके माध्यम से सर्वोच्च ज्ञान तथा प्रेम के साथ कार्यों में एकता की अनुभूति की जाती है।

श्री अरविंदो के शब्दों में—'आध्यात्मिकता का सार है अपने अस्तित्व की आंतरिक वास्तविकता के प्रति जागृत, अपनी आत्मा, अपने भाव, अपने-आपको जानना कि हमारे मस्तिष्क और शरीर से पृथक है। आध्यात्मिकता उस वृहत्तर वास्तविकता को जानने, उसका अनुभव करने, उसमें जीने, उसके साथ संबंध स्थापित करने की आंतरिक प्रेरणा है जो इस संसार और उससे परे सर्वत्र व्याप्त है और जो हमारे अंदर भी उपस्थित है। यह उस वास्तविकता के साथ रहने और उसके साथ संबंध जोड़ने का नाम है।' इसी प्रेरणा, संपर्क, संगति और नए रूप तथा नए स्वभाव एवं प्रकृति के परिणामस्वरूप अपने-आपको बदलने और नई शक्ति प्राप्त करने का नाम 'आध्यात्मिकता' है।

भारतीय संस्कृति के मूल्य

यह स्वाभाविक है कि भारतीय शिक्षा में भारतीय मूल्यों के महत्व को रेखांकित किया गया है।

भारतीय चिंतन में 'अहम्' और 'आत्म' में भेद किया जाता है। इस चिंतनधारा के अनुसार एक अहंकारी व्यक्ति आंतरिक द्वंद्व और अंतरभेदों में फंसा रहता है। इसके विपरीत एक सच्चे स्वभाव की स्थिति द्वंद्व और अंतरभेदों से मुक्त रहती है। एक सच्चा अंत:करण एक समन्वय केंद्र के समान होता है जहां मनुष्य के शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक और अन्य व्यक्तियों में संगति उत्पन्न होती है। भारतीय शिक्षा में आत्मबोध को सर्वोच्च आध्यात्मिक मूल्यों में गिना जाता है।

वास्तव में कुछ ऐसे जीवन-मूल्य हैं जो अद्वितीय रूप से भारतीय हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि इन मूल्यों को भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी श्रेष्ठ माना जा सकता है पर भारत में इन्हें विशेष उत्साह, समर्पण और पूर्णता तथा विशिष्टता के साथ अपनाया जाता है। इस संबंध में एक उदाहरण 'सहिष्णुता' का दिया जा सकता है जो कि भारत की विशिष्टता है। भारतीय संस्कृति के लंबे इतिहास में अन्य सांस्कृतिक तत्वों की अच्छी बातों को जोड़ने और अपनाने का आदर्श और मूल्य बराबर एक आदर्श लक्ष्य माना गया है। मेल-मिलाप की इस मूल भावना में ही विविधता के बीच एकता, पारस्परिकता और एकात्मकता की भावना जुड़ी है।

कई ऐसे और भारतीय मूल्य हैं जिनका विशेष रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता है और उन्हें हमारी शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जाना चाहिए। विभिन्न तीज-त्योहारों के साथ जुड़ी खुशियों को तभी समझा जा सकता है जब कि भारतीय संस्कृति के मन और आत्मा में उतरकर उन्हें देखा जाए। 'धर्म' शब्द द्वारा अभिव्यक्त जीवन की लय और संगीत का नियम भी ऐसा भारतीय विचार है जिसका कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता। पुनश्च, ज्ञान, शुद्धता और बुद्धि की प्राप्ति के लिए हम जिन मूल्यों पर चलते हैं उन्हें हम सर्वोत्तम मानते हैं और उनके लिए हमारे मन में सर्वस्व त्याग की प्रेरणा जगती है। हमारा मानना है कि ऐसे भारतीय मूल्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि हमने विशिष्ट भारतीय मूल्यों में से जिनकी ऊपर चर्चा की है वे हमारे स्वाधीनता संग्राम में लोगों में बड़े गतिमान रूप से संपादित हो चले थे। वास्तव में वह दौर ऐसे महान स्त्री-पुरुषों के उत्थान का था जिन्होंने इन मूल्यों को अपनाया और उन्हें समृद्ध किया। यही नहीं, इन मूल्यों ने ही उस समय के बड़े-बड़े आंदोलनों और घटनाओं के लिए प्रेरणा और दिशा दी तथा उनका रूप निर्धारित किया। इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का अध्ययन प्रेरणा का एक अनवरत स्रोत है। मूल्योन्मुख शिक्षा में इसे भी शामिल किया जाना चाहिए। ❑

(लेखक श्री किरीट जोशी मानव संसाधन मंत्रालय के तहत 'इंडिया काउंसिल फार फिलासाफिकल रिसर्च' के अध्यक्ष हैं।)

	STUDENT NAME	PLACE	RANK
1.	ALOK RANJAN JHA	NEW DELHI	1
2.	AJEET KUMAR	DELHI	7
3.	NITESH KUMAR JHA	SAHARSA	10
4.	KRISHAN KUMAR	DELHI	11
5.	PANKAJ KUMAR	DELHI	14
6.	RADHIKA SHUKLA	ALLAHABAD	15
7.	SMARAKI MAHAPATRA	SECUNDERABAD	17
8.	MANJULA N	BANGALORE	25
9.	PRAKASH GUPTA	LUCKNOW	33
10.	ANN MARY BABY	KOLLAM	38
11.	SONIA NARANG	CHANDIGARH	47
12.	HARSHITA ATTALURI	SECUNDERABAD	51
13.	SHAMLA AHAMMED	KOLLAM	54
14.	PRAVEEN KUMAR S	HYDERABAD	56
15.	SANJAY PUNGLIA	CHITTORGARH	59
16.	PANKAJ KUMAR PAL	AGRA	64
17.	IMKONGLA JAMIR M	DELHI	65
18.	SHUBHRATA VERMA	TRICHY	66
19.	MRINALINI SHRIVASTAVA	INDORE	67
20.	SURABHI SHARMA	JANJGIR	70
21.	SAURABH KUMAR	ALLAHABAD	78
22.	RAKESH RATHI	HOWRAH	79
23.	RAJAT AGARWAL	GAJRAULA	84
24.	PRATIMA SATISH K VERMA	GULBARGA	93
25.	RAMAPRIYA RAGHAVAN	DELHI	95
26.	ROHIT YADAV	KANPUR	102
27.	VENKATESH T G	CHENNAI	127
28.	ROLI SHUKLA	LUCKNOW	133
29.	BINAYA S PRADHAN	DEOGARH	135
30.	NAGARAJAN S	TIRUNELVELI	137
31.	VIKASH KUMAR AGARWAL	KHARAGPUR	148
32.	AMPADY K	ALAPUZHA	153
33.	KANWALPREET	HOSHARPUR	163
34.	HIMANI SARAD	SANGRUR	169
35.	SURESH H H	BANGALORE	170
36.	C PURUSHOTHAM B V R	HYDERABAD	174
37.	JAGANNATH SRINIVASAN	NEW DELHI	179
38.	SARAVANAN M	SALEM	191
39.	AARTI DEWAN	PANCHKULA	196
40.	PRANAV GANESH	ALLAHABAD	200
41.	NEIL JAIN	LUCKNOW	202
42.	HINA ARORA	ROHTAK	206
43.	ANJAN RAY	KOLKATA	214
44.	KRISHNA KUNAL	HAZARIBAGH	244
45.	BATTULA BALA KRISHNA	HYDERABAD	249
46.	SUBRAMANYESWARA RAO A	BANGALORE	265
47.	APARNA H S	BANGALORE	289
48.	PRADYUMNA P S	MYSORE	337
49.	PRANAB JYOTI NATH	GUWAHATI	356
50.	KHADE S PANDHARINATH	SANGLI	375
51.	ATHELI H	KOHIMA	394
52.	NGACHAN Z	SHILLONG	405
53.	VINAYAK R NAYAK	HUBLI	414

Masterminds. Chosen to shape India's future.

Brilliant's students who made it into the Top 100 in

IAS 2001

ALOK RANJAN JHA
RANK: 1

AJEET KUMAR
RANK: 7

NITESH KUMAR JHA
RANK: 10

KRISHAN KUMAR
RANK: 11

PANKAJ KUMAR
RANK: 14

RADHIKA SHUKLA
RANK: 15

SMARAKI M
RANK: 17

MANJULA N
RANK: 25

PRAKASH GUPTA
RANK: 33

ANN MARY BABY
RANK: 38

PHOTO NOT CLEAR
SONIA NARANG
RANK: 47

HARSHITA ATTALURI
RANK: 51

SHAMLA AHAMMED
RANK: 54

PRAVEEN KUMAR S
RANK: 56

SANJAY PUNGLIA
RANK: 59

PANKAJ KUMAR PAL
RANK: 64

IMKONGLA JAMIR M
RANK: 65

SHUBHRATA VERMA
RANK: 66

MRINALINI S
RANK: 67

SURABHI SHARMA
RANK: 70

SAURABH KUMAR
RANK: 78

RAKESH RATHI
RANK: 79

RAJAT AGARWAL
RANK: 84

PRATIMA S K V
RANK: 93

RAMAPRIYA R
RANK: 95

53 of our students are confirmed successful in the

Civil Services Exam 2001.

We envision the most distinguished careers for these bright young men and women and wish them the very best!

BRILLIANT® TUTORIALS

Box: 4996-CR, 12 Masilamani St., T. Nagar, Chennai 600 017. Ph: 4342099 (4 lines) Fax: 4343829

• General Studies • All optionals except Medical Science & Indian Language(s) Literature
• Concurrent despatch of lessons for Prelim and Main Exams • Interview Guidance Notes • Mock Viva Training

ENROLMENT CONTINUES FOR IAS MAIN 2002. ADMISSION OPEN FOR IAS 2003. DESPATCH NOW ON.

Write, call, fax or access our website www.brilliant-tutorials.com for free Prospectus and Application Form.

मूल्योन्मुख शिक्षा—शिक्षकों की भूमिका

○ स्वामी गोकुलानन्द

मूल्यों का संबंध किसी 'व्यक्ति' या 'समूह' के व्यवहार से होता है। वही मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और वही उसके जीवन की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। अत: व्यक्ति का कार्य-चयन उसके मूल्य विकल्पों पर आधारित होता है।

मूल्यों के अनेक पक्ष हैं जैसे आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक। ये परस्पर संबद्ध हैं। आज मूल्यों का अध्ययन किसी वर्ग विशेष, यथा— ब्रह्मविज्ञानी, मानवविज्ञानी अथवा दार्शनिक का अधिकार क्षेत्र नहीं रहा है। मूल्यों की बात समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, समाज-विज्ञानी एवं मानव-विज्ञानी के लिए भी महत्वपूर्ण है। इन सभी को मूल्य एवं मूल्य-प्रणाली के प्रभावों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। जीव-विज्ञान क्षेत्र की आधुनिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करने वाले सामाजिक-भौतिक मुद्दे व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पहलू के अलावा अन्य कारणों से भी संचालित होते हैं।

आधुनिक विज्ञान का मूल्यों के संबंध में अपना अलग दृष्टिकोण है। वैज्ञानिक अनुसंधान की आधुनिक परंपरा यह मानती है कि हमारी मूल्य-प्रणाली नैतिकता हमारी अवधारणा से प्रभावित होती है। यों तो विज्ञान का नैतिकता-प्रतिपादन से कोई सीधा संबंध नहीं है परन्तु मनुष्य की ज्ञान-प्राप्ति की लालसा जिन अनवरत मूल्यों की खोज से प्रेरित होती है, वह भी विज्ञान का ही एक रूप है। आज के युग में तकनीक ही वह प्रमुख स्रोत है जो सामाजिक मूल्यों में बदलाव लाता है और आर्थिक मूल्य-प्रणाली को प्रोत्साहित करता है। यह भी सच है कि तकनीकी विकास पारंपरिक सीमाओं एवं सोच को नष्ट कर रहा है जिससे न केवल मनुष्य-मनुष्य के बीच बल्कि पर्यावरण एवं मनुष्य के बीच भी स्थायी अंतर्संबंध अत्यंत आवश्यक हो गए हैं।

आज हर नवयुवक इस युग की बौद्धिक समस्याओं से परेशान और भौचक है। सभ्यताओं और संस्कृतियों के बीच जो टकराव विद्यमान है, वह उसे समझने और उसे कम करने के उपाय ढूंढना चाहता है। विज्ञान और तकनीक एक ओर तो मनुष्य को धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत से परहेज करना सिखाते प्रतीत होते हैं; दूसरी ओर वे उसे अपनी अस्मिता बचाए रखने अथवा बेहतर जीवन जीने हेतु आध्यात्मिकता की ओर भी प्रेरित कर रहे हैं। इस बात को यदि गंभीरता से लिया जाए और यदि हम यह स्वीकार कर सकें कि विज्ञान और तकनीक मूल्य-संबंधी अवधारणाएं हैं तो भौतिकी तथा अभौतिकी के शानदार समन्वय को बड़ी आसानी से अंगीकार किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि बदलाव और हलचल के इस दौर में सबसे अधिक दबाव युवा पीढ़ी पर है जिसे न केवल विधिवत शिक्षा प्राप्त करनी है अपितु जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाना भी सीखना है। इससे भी अधिक उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो भावनात्मक सुरक्षा को लेकर उनके मन में उठने वाली गहन शंकाओं का समाधान प्रस्तुत कर सके। युवाओं को जीवनपर्यंत सही निर्णय लेने की अपनी क्षमता का विकास करना सीखना है। उनका अपना भविष्य अंधकारमय है और विश्व का भविष्य इन युवाओं के भविष्य से असंदिग्ध रूप से जुड़ा है।

बदलाव और हलचल के इस दौर में सबसे अधिक दबाव युवा पीढ़ी पर है जिसे न केवल विधिवत शिक्षा प्राप्त करनी है अपितु जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाना भी सीखना है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह कार्य शिक्षकों द्वारा ही किया जा सकता है, जिनका सीखने-सिखाने के इस महत्वपूर्ण दौर में विद्यार्थियों के साथ निकटतम संबंध होता है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह कार्य शिक्षकों द्वारा ही किया जा सकता है, जिनका सीखने-सिखाने के इस महत्वपूर्ण दौर में विद्यार्थियों के साथ निकटतम संबंध होता है। वे ही इन युवाओं को शिक्षित करने, उनका मार्गदर्शन करने तथा उन्हें भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करने की गंभीर नैतिक एवं व्यावहारिक जिम्मेदारी वहन कर सकते हैं। अत: शिक्षकों को ही अपरिपक्व युवा पीढ़ी के दिग्दर्शन में प्रभावी भूमिका निभानी होगी। मां-बाप तो बच्चों की भौतिक सुरक्षा और मूल भावनात्मक सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होंगे ही परंतु शिक्षक ही उनमें मूल शैक्षणिक प्रक्रिया की वह समझ विकसित कर सकते हैं जो उनमें नागरिकता, कर्त्तव्य और अधिकार की अवधारणाओं को पुष्ट करे और आगे चलकर राष्ट्र का महान नागरिक बनने में सहायता करे। शिक्षक ही उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उसके द्वारा प्राप्त अधिकारों को सामाजिक उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यों के साथ समन्वित करके देखने की दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षकों को कितना बड़ा सौभाग्य प्राप्त है और यह भी कि उन पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाए और उनमें ठोस वैचारिक परिवर्तन लाया जाए। वैचारिक दृष्टिकोण के इस बदलाव से ही शिक्षकों में वह विस्मयकारी ऊर्जा गतिमान होगी जो भौतिक अथवा आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से कभी पैदा नहीं की जा सकती। शिक्षक को इस ऊर्जा को पहले स्वयं आत्मसात करना होगा और फिर अपने संपर्क में आने वाले विद्यार्थियों में उसका प्रवाह करना होगा। शिक्षक का कार्य केवल शिक्षण नहीं अपितु दिग्दर्शन भी है। आध्यात्मिक चेतना और पूर्ण समपर्ण से प्रेरित आत्मबल ही दी जाने वाली शिक्षा को प्रभावी बना सकता है, कोरा उपदेश नहीं। आगामी दशकों में दुनिया में भारत की छवि कैसी होगी यह इस बात पर निर्भर है कि उसके विद्यार्थियों को आज कक्षाओं में शिक्षक क्या सिखाते हैं। आज के स्कूली बच्चे कल काम करने वाले बनेंगे और राष्ट्र की जिम्मेदारियां उनके कंधों पर होंगी। यह शिक्षकों का ही दायित्व है कि वे उनमें राष्ट्रप्रेम और कर्त्तव्य-भावना का सही विकास करें।

अतीत के गर्भ से उभरी प्रत्येक सांस्कृतिक परंपरा कुछ अच्छाई, कुछ बुराई लिए होती है। हमारा कार्य है कि हम उसकी बुराई को त्यागें और अच्छाई को सुदृढ़ करें। विद्यार्थियों को अपनी राष्ट्रीय विरासत के संबंध में यह चयन-क्षमता विकसित करनी होगी। मूल्योन्मुख शिक्षा ही उन्हें इस कार्य में सक्षम बना सकती है। साथ ही उन्हें आत्मिक शक्ति भी देती है कि वे उसमें जो बुरा है, निरर्थक है, और पीछे ले जाने वाला है, उसका त्याग करें। जब हम मानवीय उत्कृष्टता की ओर अग्रसर मानव-चरित्र की चर्चा करते हैं तो हमें अपने शास्त्रों और अपने साहित्य से ये दो शब्द मिलते हैं— 'व्यक्तित्व' तथा 'विकसित व्यक्तित्व'। मूल्योन्मुख शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति में उन गुणों का विकास करना जो उसे एक 'विकसित व्यक्तित्व' प्रदान करते हों। वही शिक्षा सफल कही जा सकती है एवं वही राष्ट्र महान बन सकता है जहां बच्चे और बड़े जीवन का वह स्तर प्राप्त कर लेते हैं जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता मनोवैज्ञानिक परिपक्वता के साथ मिलकर आगे बढ़ती है।

अगला स्तर वह है जो व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास से जुड़ा होता है। जब व्यक्ति में यह आयाम भी जुड़ जाता है तब महान परिणाम निकलते हैं। आध्यात्मिकता का विकास होने पर ही युवा पीढ़ी त्याग, सेवा, धर्म और कर्म जैसे महान आदर्शों का वास्तविक अर्थ समझ पाती है। विज्ञान के विषयों की पढ़ाई पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक मनोवृत्ति का भी विकास किया जाना चाहिए। इस वैज्ञानिक मनोवृत्ति के साथ मानवीय चरित्र भी जुड़ा है। वेदांत के अनुसार ये दोनों मिलकर ही व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास संभव बनाते हैं। वेदांत हमेशा तार्किक और अन्वेषक-बुद्धि के विकास का पक्षधर होता है। अत: हमारी शिक्षा को चाहिए कि वह बच्चों में इस वैज्ञानिक, इस तार्किक और इस सत्यखोजी दृष्टि को पनपाए। सच क्या है?— सच्चा जीवन किसे कहते हैं? एक सच्चा जीवन, न कि झूठा जीवन, कैसे जिया जाए? इन्हीं प्रश्नों का जवाब देने वाली शिक्षा असली शिक्षा है। यह सब बच्चे को शिक्षक द्वारा सिखाया जाना चाहिए।

शिक्षा में मूल्य

मूल्योन्मुख शिक्षा को यदि कोरी नैतिक शिक्षा माना जाए तो वह कभी सफल नहीं हो सकती। मूल्योन्मुख शिक्षा में सिखाने के बजाय सीखने की प्रक्रिया पर अधिक बल दिया जाता है। उससे भी अधिक जरूरी यह है कि वह सीखने की अनुभवात्मक प्रक्रिया से संबद्ध हो।

यह बात ध्यान रखी जानी चाहिए कि मूल्योन्मुख फैसलों में निहित मनोवैज्ञानिक अंश अंतर्मन एवं आदेश, धर्म (कर्त्तव्य) एवं धर्म, उदारता एवं उच्छृंखलता, उपभोक्तावाद एवं पर्याप्तता जैसे विचारों के बीच संघर्ष को बढ़ावा देती है। मूल्योन्मुख शिक्षा देने के लिए हमें इन सब पहलुओं का गहन अध्ययन करना करना होगा और ऐसे सभी शब्दों में निहित मूल्यों के प्रति जागरूक बनाने वाली उपयुक्त कार्यनीति विकसित करनी होगी।

शिक्षकों का मूल्योन्मुख प्रशिक्षण इस संदर्भ में विशेष महत्व का है, खासकर नई शैक्षणिक नीतियों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों को इस बात के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए कि वे मूल्योन्मुख शिक्षा के बारे में अधिक जानने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करें। इन पाठ्यक्रमों में निम्न बातें शामिल की जा सकती हैं :

1. मूल्यों की परिभाषा।
2. मूल्यों का स्पष्टीकरण।
3. मूल्यों के स्रोतों की पहचान।
4. मूल्यों के जटिल अंतर्संबंधों की समझ।

5. मनोवृत्ति एवं व्यवहार।
6. मूल्य एवं सामाजिक कायदे-कानून।
7. मूल्यों में बदलाव के कारणों की पहचान।
8. मूल्य, धर्म (कर्त्तव्य) और विभिन्न धर्मों का ज्ञान।
9. मूल्य एवं पर्यावरण।
10. मानव गुणवत्ता सुधार के लिए मूल्य एवं इच्छाशक्ति का विकास।
11. इच्छाशक्ति बढ़ाने का अभ्यास।
12. मूल्य एवं आध्यात्मिकता।

निष्कर्ष

ऊपर हमने संक्षेप में नागरिकता, कर्त्तव्य, व्यक्तित्व, उत्कृष्टता एवं मूल्यों की चर्चा की। इस संक्षिप्त लेख में मूल्यों की परिभाषा की चर्चा न की गई तो विषय से पूर्ण न्याय नहीं किया जा सकेगा। इनकी चर्चा अंत में इसलिए की जा रही है कि मूल्यों के प्रश्न पर आने से पहले हम व्यक्ति की स्थिति के सभी पहलुओं से भली प्रकार अवगत हो जाएं। 'मूल्य' शब्द पिछले कुछ दशकों से सर्वव्यापक एवं इसी कारण संदिग्ध हो गया है। हम आर्थिक-मूल्य, सामाजिक-मूल्य, राजनीतिक-मूल्य, मानवीय-मूल्य, नैतिक- मूल्य, राष्ट्रीय-मूल्य तथा धार्मिक-मूल्य की चर्चा करते और सुनते आए हैं। फिर 'मूल्य' को कैसे परिभाषित किया जाए? इसके लिए हमें पहले निम्नलिखित को स्पष्ट रूप से समझना होगा :

(क) व्यक्तिगत पक्ष; इस सामान्य नियम को अंगीकार करते हुए कि विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ना बेहतर है।
(ख) मनोवृत्ति एवं निर्धारक : यह एक जीवंत प्रक्रिया है जो निरंतर जारी रहती है। हमें यह जानना होगा कि मनोवृत्ति पर क्या चीज प्रभाव डालती है।
(ग) मूल्य एवं मूल्य-संदर्भक।
(घ) व्यवहारगत पहलू।
(ङ) समाज एवं पर्यावरण।
(च) व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याएं।
(छ) सह-संबंध एवं एकांत : सामान्य तौर पर देखा जाए तो संपूर्ण मानव समस्या।

अंत में कहा जा सकता है कि राष्ट्र-निर्माण का मुद्दा एक वृहदाकार एवं संवेदनशील मुद्दा है। भविष्य युवा पीढ़ी का है। अत: सबसे भारी जिम्मेदारी शिक्षकों के कंधों पर है। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि इस कार्य में संलग्न सामाजिक, शैक्षणिक, और सबसे बढ़कर आध्यात्मिक एवं धार्मिक संस्थाएं अपने इस कार्य में सफल हो सकेंगी। हमारे पास शक्ति भी है और एक महान विरासत की पृष्ठभूमि भी। उसका आधुनिक समय के साथ तालमेल बैठाना हमारी अपनी जिम्मेदारी है। ❑

(लेखक नई दिल्ली के रामकृष्ण मिशन में सचिव पद पर कार्यरत हैं।)

BRILLIANT TUTORIALS COURSES
TOWARDS
ENGINEERING AND MEDICAL

Brilliant Tutorials, India's leading coaching institution for competitive examinations has guided thousands of bright, focussed young men and women to achieve their goals through the following programmes.

Brilliant's Courses for IIT-JEE 2003 & 2004	Brilliant's Courses for Medical 2003 & 2004
• 2 Year **Elite** with **YG-Files + B.MAT** for **IIT-JEE 2004** For students studying in Std. XI	• 2 Year **CBSE +** with **Question Bank** and **B.NET series for CBSE PM/PD** and **other All India Entrance Exams by other institutions.** For students studying in Std. XI
• 1 Year Course with **YG-File + B.MAT** for **IIT-JEE 2003.** For students studying in Std. XII	• 1 Year Course with **Question Bank** and **B.NET series for CBSE PM/PD** and **other All India Entrance Exams by other institutions.** For students studying in Std. XII
• **Target-IIT** **Courses to build a firm foundation** For students studying in Stds. IX, X	• **Target-Medical** **Courses to build a firm foundation.** For students studying in Stds. IX, X

Brilliant is now offering 1 year course for CBSE's newly introduced

AIEEE SEAT 2003

AIEEE **- All-India Engineering Entrance Examination – 2003 and**

SEAT - 1 Year course for State Engineering Admission Tests – 2003

(CET, Chandigarh; JEE, Orissa; DCE, Delhi; CEET, Kurukshetra; UPSEAT, U.P.; PET, M.P.; EAMCET, A.P.; PET, Rajasthan; TNPCEE, Tamil Nadu; BCECE, Patna; WBJEE, West Bengal; CET, Karnataka)

To know more about Brilliant's Courses – Call, write, fax or e-mail

BRILLIANT® TUTORIALS

You can't prepare better

12, Masilamani Street, T. Nagar, Chennai-600 017.
Phone: 044-4342099, Fax: 044-4343829
email:enquiries@brilliant-tutorials.com

मूल्योन्मुख शिक्षा कैसी हो?

*('मूल्योन्मुख शिक्षा' के संबंध में केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री, **श्री मुरली मनोहर जोशी** द्वारा मुख्य सम्पादक, श्री विश्वनाथ रामशेष को दिए गए साक्षात्कार पर आधारित)*

प्रश्न : वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यों और तथ्यों का क्या महत्व है?

उत्तर : हमारे देश की परम्परा है मूल्य-आधारित शिक्षा। सच बोलना, एक दूसरे से प्रेम रखना, एक दूसरे की सहायता करना—ये 'मूल्य' हर देश और हर धर्म में प्रधान रूप होते हैं। उदाहरण के तौर पर बांट कर खाना एक अच्छा 'मूल्य' है परंतु दूसरों के हाथ से छीन कर खाना गलत चलन है और यह किसी भी धर्म, किसी भी देश में 'मूल्य' में सम्मिलित नहीं हो सकता। अच्छा आचरण, अच्छा चरित्र अच्छे मूल्यों के माध्यम से ही बन सकता है और यही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है।

प्रश्न : क्या आजकल की बाजारी शक्तियों के बीच, जहां भौतिक साधन और भौतिक विलास का सर्वत्र बोलबाला है, मूल्य-आधारित शिक्षा अपनी पहचान बना सकती है?

उत्तर : यह विश्व जितना अधिक भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे दौड़ रहा है, उतना ही अधिक अपनी अंतरात्मा में झांकने को भी विवश हो रहा है। सारे पश्चिमी देशों में भौतिक विलास के कारण केवल समृद्धि ही नहीं, आक्रोश और अशांति भी बढ़ती दिखाई दे रही है। इस कारण ये सभ्य देश हमारे जैसी प्राचीन संस्कृति की मूल्य-आधारित आध्यात्मिक शिक्षा की तरफ झुक रहे हैं। दूसरे हिसाब से यदि देखा जाए तो जब भौतिक विकास ज्यादा होने लगता है तब समाज में परस्पर आक्रोश बढ़ने लगता है जो विकास और लोगों के बीच खाई पैदा करता है। परंतु अपने देश में हम सदियों से मानव-मूल्यों के विकास पर बल देते आए हैं और देश को एक करने में हमारी आध्यात्मिक शक्ति हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। अतः चाहे जितना भी विकास हो अथवा प्रचार के माध्यम अपने कार्य में जितनी ही तेजी लाएं, हमारी मूल्य-आधारित जो मान्यताएं हैं, वे हमेशा बनी रहेंगी और आगे भी बढ़ेंगी।

प्रश्न : भारतवर्ष में शिक्षा क्षेत्र में मूल्य-आधारित शिक्षा के प्रसार के लिए सरकार क्या कार्यक्रम चला रही है?

उत्तर : हमारे शिक्षा केन्द्रों में मूल्यों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है और मूल्य-आधारित शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो विचार और कार्यक्रम के बीच में सूत्र बना रहता है। हम अपने अध्यापकों को मूल्य-आधारित शिक्षा का प्रशिक्षण दे रहे हैं। साथ ही जो संस्थाएं मूल्य-आधारित शिक्षा पर काम कर रही हैं, वहां भी कार्यक्रमों को जारी रखने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अलावा समाज के हर क्षेत्र में मूल्यों का प्रचार होता रहे, यही हमारा उद्देश्य है ताकि शिक्षा सिर्फ विद्यालयों तक सीमित न रहे अपितु यह मनुष्य के जीवन में हर पल एक अच्छे चरित्र के रूप में झलके।

मूल्योन्मुख शिक्षा

○ अनिल विल्सन

आज मानव-संबंध संकट में है, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। यह भी निर्विवाद है कि इस संकट का संबंध शिक्षा क्षेत्र से है। आज हर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उसका अध्ययन करने वाले की आय-अर्जन क्षमता के आधार पर किया जाता है। विश्वविद्यालयी शिक्षा जीवन को बदलने वाला अनुभव नहीं, एक पण्य 'पदार्थ' या 'वस्तु' बन गई है। 'आदर्श' शिक्षा का कोई भी प्रयास 'मूल्योन्मुख शिक्षा' की उपेक्षा नहीं कर सकता।

सत्ता पाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तत्व है लोगों पर नियंत्रण। सत्ता के दलालों ने समय के साथ इस बात को अच्छी तरह समझ लिया है कि लोगों पर नियंत्रण करने से पहले जरूरी है कि उस शिक्षा को नियंत्रित किया जाए जो लोगों के आचार-व्यवहार को निर्धारित करती है। शिक्षा को आदर्शविहीन कर दिया जाए तो जनता पर शासन करना आसान हो जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आदर्शों में निष्ठा रखने वाले लोग उन आदर्शों से ही नियंत्रित होते हैं। उनके भीतर की ईमानदारी समाप्त कर दी जाए तो उत्कृष्टता को नहीं, प्रभाव को; योग्यता को नहीं, जोड़-तोड़ और संपर्कों को बढ़ावा मिलता है। सबसे अयोग्य व्यक्ति के हिसाब से मानक निर्धारित कर दीजिए तो आप सुधार की, उत्कृष्टता की और पूर्णता की ओर बढ़ने की प्रेरणा ही समाप्त कर देंगे। इस स्थिति में महाकवि टैगोर का देश के लिए यह सपना 'जहां अथक प्रयास में लगे हाथ पूर्णता की खोज करते हैं' ('जहां दिमाग भयमुक्त है, और सिर गर्व से ऊंचा रहता है') एक अव्यवहारिक मस्तिष्क की हास्यास्पद भ्रांति बनकर रह जाता है। बुनियादी मूल्य, जो पहले सार्थक शैक्षिक-प्रक्रिया की विशेषता थे, अब उपेक्षित हो गए हैं। विभिन्न परीक्षा-बोर्ड एक दूसरे से इस बात की होड़ कर रहे हैं कि उनके पाठ्यक्रम छात्रों के लिए कितने 'फ्रेंडली' हैं। शिक्षा को इस तरह आदर्शों से पृथक करने से आज जिस उत्तर-आधुनिक मनुष्य का उदय हुआ है: वह धोखा देता है, झूठ बोलता है लेकिन ऊपर से सम्माननीय बना रहता है। वह जानता है कि वह बेईमान है लेकिन इस बात से उसे तब तक कोई परेशानी नहीं होती, जब तक वह समझता है कि लोग उसे ईमानदार समझते हैं। वह इस भ्रामक सोच से अपना आत्म सम्मान प्राप्त करता है।

इस प्रकार आज मानव-संबंध संकट में है, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। यह भी निर्विवाद है कि इस संकट का संबंध शिक्षा क्षेत्र से है। यह सोचना कि समाज में दिनों-दिन नैतिकता का ह्रास हो रहा है, गलत नहीं है क्योंकि शिक्षा-प्रक्रिया आदर्शों से मुक्त कर दी गई है। तब इलाज क्या है? उत्तर है 'स्कूलों और कालेजों में एक विषय के रूप में 'मूल्योन्मुख शिक्षा' की पढ़ाई शुरू की जाए।' इस नवप्राप्त ज्ञान से उत्साहित हो हम इस बुनियादी तथ्य की उपेक्षा कर देते हैं कि जल्दबाजी में ढूंढे गए समाधान कालांतर में नई और अधिक बड़ी समस्याएं पैदा करते हैं। एक साधारण फैसला लेकर हम मान बैठते हैं कि 'आदर्श शिक्षा' सामान्य शिक्षा-प्रक्रिया से 'अलग' और 'पृथक' किए जाने योग्य विषय है। हम यह भूल जाते हैं कि शिक्षा का, सभी प्रकार की शिक्षा का, और कोई कार्य हो ही नहीं सकता क्योंकि इसका एकमात्र विकल्प है 'अमानवीय' होना। इन दोनों के बीच 'संवेदनशीलता का विकास' मानवता की सर्वप्रमुख जरूरत है। इस प्रकार हमारा साहित्य का अध्ययन तभी महत्वपूर्ण है जब वह हमें मानवीय अनुभूतियों और मनोभावों के प्रति संवेदनशील बनाता हो; हमारा अर्थशास्त्र का अध्ययन तभी सार्थक है जब वह हमें जीवन के भौतिक पहलुओं के संदर्भ में मानव अवस्थाओं के प्रति अधिक

संवदेनशील बनाता है; हमारा इतिहास का अध्ययन तभी उपयोगी है जब यह हमें उन शक्तियों के प्रति संवेदनशील बनाता है जो मानव-जीवन को प्रेरणा प्रदान करती है और अपने साथ खुशी और दुख-तकलीफ लाती हैं; हमारा विज्ञान का अध्ययन तभी महत्वपूर्ण है अगर वह हमें मानव अस्तित्व की सीमाओं-मर्यादाओं और लय-ताल के प्रति संवेदनशील बनाता है। किसी भी किस्म की शिक्षा हो, उसका मर्म मानवीय तत्व होना चाहिए। लेकिन शिक्षा-क्षेत्र में 'आदर्श' शिक्षा को पृथक विषय मानकर हमने साहित्य, अर्थशास्त्र, इतिहास और विज्ञान को मानवीय तत्वों और उसके मूल उद्देश्य— संवेदनशील और मानवीयता से विमुख कर दिया है। इन विषयों ने मानवीय तत्वों से पृथक या स्वतंत्र अपनी स्वायत्तता प्राप्त कर ली है। अब हम इन विषयों का अध्ययन उनकी संवेदनात्मकता के लिए नहीं, बल्कि उनकी धनोपार्जन क्षमता के लिए करते हैं। एक छात्र की नजरों में धनार्जन क्षमता किसी विषय का महत्व और मूल्य निर्धारित करती है। इस प्रकार आज 'वाणिज्य' ऐसा विषय है जिसकी मांग छात्रों में अधिक है, जबकि 'दर्शन-शास्त्र' या 'इतिहास' या 'कला' लेने वाले छात्र नगण्य हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा में महत्व या उपयोगिता का विचार दार्शनिक और भौतिक सीमाओं से हटकर बाजार-शक्तियों से प्रभावित होने लगा है। आश्चर्य की बात नहीं कि आज हर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उसका अध्ययन करने वाले की आय-अर्जन क्षमता के आधार पर किया जाता है। विश्वविद्यालयी शिक्षा जीवन को बदलने वाला अनुभव नहीं, एक पण्य 'पदार्थ' या 'वस्तु' बन गई है। अब कालेज को किसी व्यक्ति का चरित्र-निर्माण करने वाली संस्था के रूप में नहीं, कार्यस्थल के अस्थाई शिविर के रूप में देखा जाता है। मानवीय मूल्यों से विमुख इस प्रकार के बौद्धिकवाद का परिणाम क्या होता है यह हम सभी देख रहे हैं— हमारे पास शक्ति है; उत्तरदायित्व की भावना नहीं, राय है परंतु तार्किक प्रक्रिया नहीं; जीवन है परंतु चेतना नहीं; ध्वनि है पर अर्थ नहीं; हम अपराधियों को अपनाते हैं; तानाशाहों की प्रशंसा करते हैं; शिक्षा देने को विद्वत्ता समझते हैं; परीक्षा में अच्छा स्थान पाने को प्रतिभा समझते हैं; डिग्रियों को क्षमता समझते हैं; और वाग्मिता (बोलने में प्रवाह) को मौलिक सोच मानते हैं। शिक्षा को 'आदर्श' से पृथक करने से और एक नया विषय 'आदर्श-शिक्षा' बनाने से हमारी काफी हानि हुई है।

शिक्षा में महत्व या उपयोगिता का विचार दार्शनिक और भौतिक सीमाओं से हटकर बाजार-शक्तियों से प्रभावित होने लगा है। आश्चर्य की बात नहीं कि आज हर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उसका अध्ययन करने वाले की आय-अर्जन क्षमता के आधार पर किया जाता है। विश्वविद्यालयी शिक्षा जीवन को बदलने वाला अनुभव नहीं, एक पण्य 'पदार्थ' या 'वस्तु' बन गई है।

मानव संबंधों का संकट गहराया है और सत्ता का खेल खेलने वालों को खुली छूट मिली है। 'आदर्श' शिक्षा का कोई भी प्रयास 'शिक्षा में मूल्य' अथवा 'शिक्षा में आदर्श' की उपेक्षा नहीं कर सकता। 'शिक्षा में आदर्श' अथवा 'शिक्षा में मूल्य' इस बात पर जोर देता है कि 'किसी विषय को पढ़ाने' और किसी व्यक्ति को शिक्षित करने मे 'विषय दिशानुकूलन' और 'शिष्य-दिशानुकूलन' अलग-अलग बातें हैं और शिक्षा का सच्चा कार्य दूसरा वाला है। इस अंतर को स्वीकार करने का अर्थ है इस तथ्य को स्वीकार करना कि तटस्थ शैक्षिक-प्रक्रिया जैसी कोई वस्तु होती ही नहीं। सभी शिक्षा—चाहे उसका विषय कुछ भी हो, उसे पेश करने का स्वरूप कुछ भी हो— एक रुझान, एक विशिष्ट झुकाव, एक मूल्य या मान्यता को लेकर चलती है। पक्षपातरहित अथवा निष्पक्ष शिक्षा जैसी कोई वस्तु है ही नहीं।

पक्षपातरहित शिक्षा की इस वर्तमान शब्दावली— वैज्ञानिक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में वैज्ञानिक तथ्यों का उपयोग— का उदय 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। सुप्रसिद्ध सांख्यिकीविद कार्ल पीयर्सन ने (जो बाद में दार्शनिक बन गए थे) यह कहकर वैज्ञानिक 'ज्ञान' को 'राय' से पृथक करने का प्रयास किया कि विज्ञान का सार या निचोड़ 'तथ्यों' का एकत्रीकरण और उनका वर्गीकरण है। तथ्यों को तकनीकी दृष्टि से सही और अनुसंधान या शोध-आधारित होना चाहिए। इसलिए यह तथ्य-प्रस्तुतीकरण 'राय' से पृथक है और निहितार्थ में 'मान्यतारहित' अथवा 'मान्यता-मुक्त' है। 1930 के तर्कसंगत प्रत्यक्षवादी आंदोलन ने एक कदम आगे बढ़ाया जब उसने सभी वक्तव्यों को दो मोटे वर्गों विभक्त किया—निश्चयात्मक और मानकीय। 'निश्चयात्मक वक्तव्य' तथ्य का विवरण है, जबकि 'मानकीय राय' मत प्रकट करने वाला वक्तव्य है। इस प्रकार यह वक्तव्य कि 'विस्फोटक सामग्री का उपयोग बड़े पैमाने पर विनाश कर सकता है', एक निश्चयात्मक वक्तव्य है क्योंकि गवाही पेश कर इसका समर्थन या खंडन किया जा सकता है। यह वक्तव्य कि 'देशों को आपसी संबंधों के समाधान के लिए इस प्रकार की युक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए' मानकीय वक्तव्य है क्योंकि यह एक 'राय' प्रकट करता है। तर्कसंगत प्रत्यक्षवाद और निश्चयात्मक मानकीय अंतर को चुनौती देने वाले प्रमुख दार्शनिक कार्ल पोप्पर थे (जिनके कार्य पर बाद में कार्ल हेम्पेल ने अधिक विस्तार से प्रकाश डाला)।

(शेष पृष्ठ 43 पर)

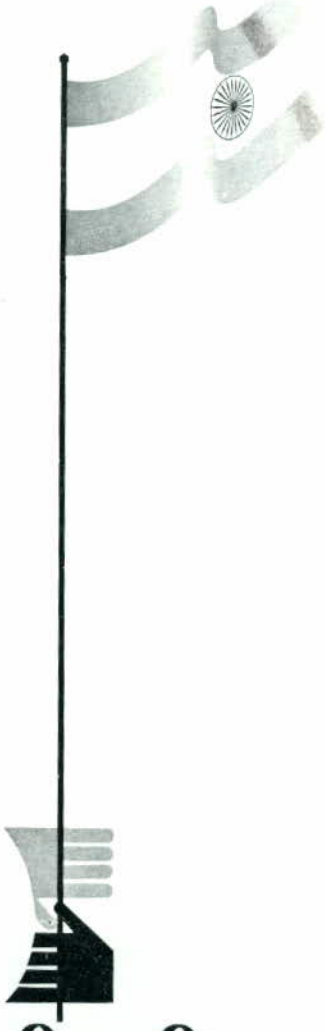

भागीदारी

नागरिक-सरकार साझेदारी

श्रीमती शीला दीक्षित
माननीया मुख्य मंत्री, दिल्ली

आइये, इस स्वतन्त्रता दिवस को हम नागरिक-सरकार साझेदारी के कार्यक्रम - ''भागीदारी'' की सफलता को व दिल्ली को और बेहतर, खूबसूरत और अधिक सुविधा सम्पन्न बनाने के संकल्प के साथ मनायें।

मेरी दिल्ली
मैं ही संवारूं

दिल्ली
सरकार

DIP 958/2002/AK&I

गए कि वे अपने पैरों पर खड़े हों। केंद्र सरकार के निर्देश पर यू.जी.सी. ने 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री के. पुन्नैया की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। उसकी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उच्च शिक्षा के निजीकरण की ओर स्पष्ट मत व्यक्त किया गया। समिति के मत में — 'कोई भी समाज जो गरीबी और गैर-बराबरी से जूझ रहा हो, विश्वविद्यालयों में हो रही फिजूलखर्ची के सब्सिडीकरण का समर्थन नहीं कर सकता अथवा संपन्न तबकों को उच्च शिक्षा पर हो रहे खर्च के भुगतान से बचे रहने की इजाजत नहीं दे सकता। इसलिए उच्च शिक्षा पर हो रहे वास्तविक खर्च का बड़ा हिस्सा उनसे वसूला जाना चाहिए।'

'उच्च शिक्षा — अनुभवों से प्राप्त सबक' नामक विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में भारतीय उच्च शिक्षा के संबंध में स्पष्ट कहा गया कि— 'बेशक यह कहना तार्किक लगता है कि उन विकासशील देशों में जिन्होंने अब तक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में पर्याप्त गुणवत्ता, समानता और अपेक्षित उपलब्धता हासिल नहीं की है, उपलब्ध सार्वजनिक संसाधनों पर उच्च शिक्षा को प्राथमिकता का दावा नहीं करना चाहिए। ऐसा इसलिए कि आमतौर पर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में किए जाने वाले निवेश का सामाजिक लाभ उच्च शिक्षा में किए जाने वाले निवेश से कहीं अधिक होता है।' एक अन्य रिपोर्ट में भी विश्व बैंक ने आगे कहा कि 'माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर दी जा रही सब्सिडी को प्राथमिक शिक्षा की ओर मोड़कर न सिर्फ प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता की पहुंच को व्यापक बनाया जा सकता है बल्कि इसके जरिए यह भी सुनिश्चित किया जा सकता है कि शिक्षा पर होने वाले सरकारी व्यय का सर्वाधिक लाभ गरीबों तक पहुंचे।' केंद्रीय विश्वविद्यालयों में फीस-ढांचे की समीक्षा और सुधार के संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित 'महमूदुर्रहमान समिति' और दिल्ली विश्वविद्यालयों में फीस-ढांचे की समीक्षा और सुधार के संबंध में गठित 'आनंद कृष्णन समिति' की जो सिफारिशें आईं, उनसे भी यह स्पष्ट जाहिर होने लगा कि उच्च शिक्षा का खर्च अभिभावकों पर थोपने की तैयारी पूरी हो चुकी है। इस प्रकार एक यही रास्ता बचा कि (1) उच्च शिक्षा में बजट-कटौती का समर्थन किया जाए, (2) विश्वविद्यालयों को आंतरिक संसाधन जुटाने को कहा जाए, और (3) निजी क्षेत्र के लिए उच्च शिक्षा के दरवाजे खोले जाएं ताकि सरकार

तालिका-2

वर्ष 2015 में विद्यार्थियों की संख्या, निवेश और संस्थाओं के प्रक्षेपण

क्र.सं.	मद	प्राथमिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा	उच्च शिक्षा
1.	विद्यार्थियों की अनुमानित संख्या	22.6 करोड़	11.3 करोड़	11.0 करोड़
2.	**संस्थाओं की:**			
	(1) कुल आवश्यकता	1506,667	125,556	37,931
	(2) वर्तमान उपलब्धता	775,000	102,000	10,460
	(3) अतिरिक्त आवश्यकता	731,667	23,556	27,471
3.	**सावधि (रैकरिंग) निवेश:**			
	(1) सरकारी क्षेत्र का हिस्सा	90 प्रतिशत	50 प्रतिशत	40 प्रतिशत
	(2) निजी क्षेत्र का हिस्सा	10 प्रतिशत	50 प्रतिशत	60 प्रतिशत
	(3) सरकारी निवेश	59265 करोड़ रु.	36511 करोड़ रु.	16483 करोड़ रु.
	(4) निजी निवेश	6585 करोड़ रु.	36511 करोड़ रु.	24724 करोड़ रु.
	गैर सावधि (नॉन रैकरिंग)			
	(1) सरकारी क्षेत्र का हिस्सा	90 प्रतिशत	50 प्रतिशत	40 प्रतिशत
	(2) निजी क्षेत्र का हिस्सा	10 प्रतिशत	50 प्रतिशत	60 प्रतिशत
	(3) सरकारी निवेश	4390 करोड़ रु.	157 करोड़ रु.	293 करोड़ रु.
	(4) निजी निवेश	488 करोड़ रु.	157 करोड़ रु.	439 करोड़ रु.
5.	**कुल निवेश:**			
	(1) सरकारी क्षेत्र का हिस्सा	90 प्रतिशत	50 प्रतिशत	40 प्रतिशत
	(2) निजी क्षेत्र का हिस्सा	10 प्रतिशत	50 प्रतिशत	60 प्रतिशत
	(3) सरकारी निवेश	63655 करोड़ रु.	36668 करोड़ रु.	16776 करोड़ रु.
	(4) निजी निवेश	7073 करोड़ रु.	36668 करोड़ रु.	25163 करोड़ रु.

स्रोत: अम्बानी-बिड़ला रिपोर्ट, 2000

के पीछे हटने से खाली हुई जगह की भरपाई हो सके।

अंबानी-बिड़ला रिपोर्ट

'ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फार फार्म्स इन एजूकेशन' नामक अम्बानी-बिड़ला रिपोर्ट 24 अप्रैल, 2000 को मुकेश अम्बानी तथा कुमार मंगलम बिड़ला द्वारा व्यापार और उद्योग पर गठित प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद को सौंपी गई। अम्बानी-बिड़ला रिपोर्ट (2000) के मुताबिक इसे वर्ष 2015 के भारत की शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। रिपोर्ट में प्रक्षेपित किया गया है कि वर्ष 2015 में देश की आबादी 125 करोड़ होगी जिसमें 5 से 24 वर्ष वयवर्ग के व्यक्तियों की संख्या लगभग 45 करोड़ होगी। इनमें से 5 से 19 वर्ष वयवर्ग के लगभग 34 करोड़ लोगों के लिए कक्षा-1 से 12 तक की शिक्षा अनिवार्य करनी होगी और अवशेष 11 करोड़ लोगों में से 20 प्रतिशत अर्थात 2.2 करोड़ उच्च शिक्षा प्राप्ति के योग्य लोगों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। उच्च शिक्षा के लिए अतिरिक्त 27 हजार 471 कालेज-विश्वविद्यालय खोलने होंगे जबकि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा हेतु अतिरिक्त 7 लाख 31 हजार 667 प्राथमिक स्कूल तथा 23 हजार 556 माध्यमिक विद्यालय स्थापित करने होंगे (तालिका-2)। इस हेतु रिपोर्ट में अगले 15 वर्षों के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र के लिए अलग-अलग निवेश के आंकलन भी प्रस्तुत किए गए।

रिपोर्ट में दिए गए आंकड़ों का अवलोकन करें तो पता चलता है कि वर्ष 2015 तक लगातार उच्च शिक्षा पर वार्षिक लगभग 42 हजार करोड़ रुपये खर्च होंगे इसके अतिरिक्त 15 वर्षों में भारत सरकार को नए उच्च शिक्षा संस्थानों के निर्माण पर 11 हजार करोड़ रुपये की पूंजी लगानी होगी। चूंकि सरकार को इतना कुछ अपने बूते पर किया जाना संभव नहीं लगा, अत: उच्च शिक्षा क्षेत्र में निजी और सरकारी क्षेत्र में क्रमश: 40 और 60 के अनुपात में पूंजी निवेश के आकलन प्रस्तुत किए गए। निश्चित ही इससे उच्च शिक्षा केवल धनाढ्य वर्ग के बच्चों के लिए ही प्राप्त करना संभव हो पाएगा। हालांकि गरीब और मध्यम वर्ग के बच्चों के लिए उच्च शिक्षा हेतु सरकार द्वारा ऋण प्रदान करने का सुझाव भी दिया गया परंतु वास्तव में वह व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता। मुख्य कारण यह है कि पहले तो इतनी बड़ी ऋण राशि अभिभावक बैंक से लेने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाएंगे और यदि ऋण ले लिया तो इसे चुकाने की क्या व्यवस्था होगी, क्योंकि पढ़-लिख पाने के बाद रोजगार की भी कोई गारंटी नहीं होगी। संक्षेप में रिपोर्ट की प्रमुख संस्तुतियां निम्न प्रकार हैं:—

1. शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम एवं सुविधाओं को समयानुकूल तथा बाजारोन्मुखी बनाया जाए।
2. व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए 'सैट', 'जी.आर.ई.' एवं 'जीमैट' के अनुरूप राष्ट्रीय स्तर पर प्रवेश-परीक्षाएं आयोजित की जाएं तथा एक संस्थान से दूसरे संस्थान में स्थानांतरण का आधार इनमें प्राप्त अंकों को बनाया जाए।
3. शिक्षकों के लिए सतत प्रशिक्षण तथा गुणवत्ता विकास के लिए कानून बनाया जाए।
4. विश्वविद्यालयों, कालेजों, संस्थानों तथा स्कूलों के स्तर को निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र एजेंसियों द्वारा समय-समय पर उनकी रेटिंग कराई जाए तथा उनका स्तर तय किया जाए।
5. शिक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी जाए। प्रारंभ में इसे विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा तक सीमित किया जाए।
6. भारतीय विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों में विदेशी विद्यार्थियों का प्रवेश प्रोत्साहित किया जाए। प्रारंभ में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति वाले संस्थानों में अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की जाए।
7. सभी राजनैतिक पार्टियों के बीच इस बात की सहमति बनाई जाए कि वे विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं से दूर रहेंगे।
8. स्नातक स्तर और उससे ऊपर हर क्षेत्र में शोध प्रोत्साहित किया जाए।
9. अर्थव्यवस्था को नियंत्रणमुक्त किया जाए ताकि शिक्षा के लिए बाजार का विकास हो।
10. विश्वविद्यालयों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता कम की जाए तथा उन्हें आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ाया जाए।
11. उच्च शिक्षा हेतु सरकार की भूमिका उच्च शिक्षा संस्थानों की मदद करने, उन्हें कोष प्रदान करने, विद्यार्थियों को कर्ज दिलाने में वित्तीय गारंटी देने, पाठ्यक्रम तथा उनकी गुणवत्ता में एकरूपता लाने तथा शैक्षिक विकास योजना बनाने तक सीमित रखी जाए।
12. कम सरकारी सहायता पाने या नहीं पाने वाले शिक्षण संस्थानों को संचालन तथा पाठ्यक्रम चयन में कल्पनाशीलता की स्वतंत्रता दी जाए।
13. विज्ञान, तकनीकी, प्रबंधन तथा वित्तीय क्षेत्रों में पढ़ाई के लिए नए निजी विश्वविद्यालय खोलने के लिए 'निजी विश्वविद्यालय अधिनियम' बनाया जाए।

क्रियान्वयन

अम्बानी-बिड़ला समिति के सुझावों पर सरसरी दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर तो सरकार की अधिकतम भूमिका चाही गई है लेकिन उच्च शिक्षा के स्तर पर इसे न्यूनतम करने का विचार प्रस्तुत किया गया है। समिति का विचार है कि जो उच्च शिक्षा का उपयोग करे, वही इसकी कीमत भी चुकाए। इस प्रकार इसमें खुलकर उच्च शिक्षा के निजीकरण पर बल दिया गया है। इसी क्रम में रिपोर्ट में नए निजी विश्वविद्यालय खोले जाने हेतु एक निजी विश्वविद्यालय विधेयक बनाने की अनुशंसा की गई है। ऐसे विश्वविद्यालयों की खर्चीली

फीसों का भार उठाने के लिए विद्यार्थियों को ऋण तथा छात्रवृत्तियां देने का प्रावधान करने और एक ऋणवसूली एजेंसी स्थापित करने का भी सुझाव दिया गया है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए भी उच्च शिक्षा का क्षेत्र खोलने तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश हेतु अखिल भारतीय स्तर पर प्रवेश-परीक्षा आयोजित करने का विचार भी रिपोर्ट में दिया गया। उच्च शिक्षा की भावी रणनीति तय करने के बारे में अम्बानी-बिड़ला समिति की सिफारिशों पर सरकार द्वारा औपचारिक रूप से चाहे जो भी निर्णय लिया गया हो, व्यावहारिक रूप में सुझावों को अमल में लाने की प्रक्रिया स्पष्ट दिखाई दे रही है। उदाहरणार्थ वर्ष 2001-2002 का बजट प्रस्तुत करते समय मेधावी छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए बैंकों द्वारा ऋण प्रदान करने की घोषणा की गई जिसके अंतर्गत उच्च शिक्षा हेतु स्वदेश में 7.5 लाख तक तथा विदेशों में 15 लाख रुपये तक सस्ती दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा यह ऋण उपलब्ध कराया भी जाने लगा है।

रिपोर्ट में प्रस्तावित निजी क्षेत्र में उच्च शिक्षा के अनेकानेक भारी-भरकम पूंजी और फीसों वाले संस्थान कुकुरमुत्तों की भांति दिन दूनी, रात चौगुनी दर से बढ़ रहे हैं। उदाहरण के रूप में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ही 29 जून, 2001 को प्रदेश में दो विश्वविद्यालय खोलने का निर्णय लिया गया।

तीसरा उदाहरण विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों का स्तर निर्धारित करने के लिए 'रेटिंग' प्रक्रिया प्रारंभ करने का लिया जा सकता है। रेटिंग एजेंसी किस आधार पर विश्वविद्यालयों को कई-कई स्टारों से विभूषित करने जा रही है, इस बारे में मीडिया में प्रकाशित खबरों के आधार पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें समस्याएं आ सकती हैं।

प्रभावी निजीकरण

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि वर्तमान में उच्च शिक्षा के निजीकरण का दौर पूरी तरह प्रारंभ हो गया है और विशेष रूप से चिकित्सा, इंजीनियरिंग, सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर, प्रबंधन जैसे कई क्षेत्रों में बड़ी तेजी से निजी संस्थान खोले जाने की प्रक्रिया चल रही है। वर्तमान उदारीकरण के दौर में यकायक इस प्रक्रिया को बंद कर पाना या विपरीत निर्णय ले पाना न तो प्रासंगिक होगा, और न ही व्यावहारिक। परंतु कुछ सुझाव निम्न प्रकार हो सकते हैं :-

1. निजी क्षेत्र में उच्च शिक्षा संस्थानों को मान्यता देते समय यह सुनिश्चित किया जाए कि केवल ख्यातिप्राप्त संस्थाओं के हवाले हों ताकि उनमें वाणिज्यिक तौर पर कमाई का साधन बनने की प्रवृत्ति न पनपे।
2. गरीब तबके के योग्य और मेधावी विद्यार्थियों को इन संस्थानों के शुल्कों आदि में पूरी छूट मिलनी चाहिए। यह शर्त लगाई जाए कि कम से कम एक तिहाई सीटें गरीब और मेधावी बच्चों के लिए नि:शुल्क रखनी होंगी।
3. निजी संस्थानों में प्रवेश का आधार केवल मैरिट हो। इसके लिए कठोर नियम बनाना और उनका पालन कराना अत्यावश्यक है।
4. निजी संस्थानों में योग्य शिक्षकों की नियुक्ति सुनिश्चित किए जाने हेतु इनके चयन की केंद्रीकृत व्यवस्था किसी आयोग का गठन करके उसके माध्यम से की जानी चाहिए।
5. निजी संस्थानों के संबंध में नीतिगत निर्णय लिए जाने से पूर्व इस हेतु बनाई गई समितियों/आयोगों, आदि में शिक्षाविदों, शिक्षकों, नियोजकों, समाजसेवी संगठनों आदि का समुचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि पारदर्शिता संभव हो।
6. निजी संस्थानों में संचालित पाठ्यक्रमों और शिक्षण कार्य की प्रभावशीलता की नियमित जांच हेतु सरकार/संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा अनुश्रवण की पक्की व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए।
7. निजी क्षेत्र में विविध प्रकार के संस्थानों को मान्यता प्रदान करने से पूर्व यह आकलन किया जाना जरूरी है कि उनकी स्थापना केवल आवश्यकतानुसार अर्थात मांग और पूर्ति में सामंजस्य के उद्देश्य से हो। त्रुटिपूर्ण आकलन द्वारा थोक भाव में उनकी स्थापना दुर्भाग्यपूर्ण होगी।
8. इन संस्थानों में निर्धारित मात्रा में शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात सुनिश्चित करने के लिए कड़े नियम निर्धारित किए जाने चाहिए।
9. सामान्य रूप से उच्च शिक्षा के संस्थानों और विशेष रूप से निजी क्षेत्र के संस्थानों को सरकार द्वारा जो भी आर्थिक अनुदान अथवा सहायता आदि उपलब्ध कराई जाए वह गुणवत्ता अथवा 'रेटिंग' के आधार पर ही उपलब्ध कराई जाए।
10. इन शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता और उनके उत्पाद की प्रभावशीलता की जांच के लिए भी नियमित जांच की व्यवस्था हो और इसके आधार पर ही उनकी मान्यता वर्षानुवर्ष बढ़ाई जाए। इससे वे अपनी गुणवत्ता के प्रति सजग रहेंगे।
11. निजी क्षेत्र में बिना मान्यता-प्राप्ति के खोले जाने वाले सभी संस्थानों की क्षेत्रवार सूची और संबंधित जानकारी के प्रकाशन की नियमित व्यवस्था की जानी चाहिए।

उच्च शिक्षा के निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों की वास्तविक स्थिति का अवलोकन किया जाए तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि आज हमारे परंपरागत संस्थान यदि दिशाहीनता, नियोजनहीनता, पुरातन पाठ्यक्रम, गुटबंदी, नियुक्ति में पक्षपात तथा वित्तीय संसाधनों के दुरुपयोग, आदि समस्याओं से ग्रस्त हैं तो दूसरी ओर निजी संस्थान उद्योगों की भांति निवेश के बदले धन प्राप्ति, व्यापार और मुनाफे की भावना से संचालित हो रहे हैं। इस प्रकार दोनों ही क्षेत्रों में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक हैं; इनमें व्याप्त विसंगतियां दूर करनी आवश्यक हैं। दोनों को एक-दूसरे का पूरक और सहयोगी बनाकर ही उच्च शिक्षा क्षेत्र को सही दिशा प्रदान की जा सकती है। ❑

(लेखक उत्तर प्रदेश के राज्य नियोजन संस्थान में संयुक्त निदेशक (प्रशिक्षण) हैं।)

16 सितम्बर-ओज़ोन दिवस पर

ओज़ोन-परत का पर्यावरण संरक्षण में महत्व

○ शिवेन्द्र कुमार पांडे

पृथ्वी में सभी जीवन-स्वरूपों के जीवित रहने के लिए आक्सीजन (O_2) एक अनिवार्यता है। आक्सीजन तीन रूपों में पाई जाती है— आक्सीजन एटम (O), आक्सीजन मालिक्यूल (O_2) और ओज़ोन (O_3)। आक्सीजन मालिक्यूल में दो एटम आक्सीजन के बद्ध (बाउन्ड) होते हैं और यही आक्सीजन पृथ्वी के निचले वायुमंडल में विद्यमान रहती है। ओज़ोन में आक्सीजन के तीन एटम बद्ध होते हैं। आक्सीजन के समान ओज़ोन भी एक रंगविहीन गैस होती है, पर उसमें तीखी गंध होती है।

आरंभ में जब पृथ्वी का उद्‌भव हुआ था, आक्सीजन गैस थी ही नहीं। ज्वालामुखियों के लगातार फूटते रहने से संपूर्ण वायुमंडल कार्बन डाइआक्साइड एवं मिथेन से भरपूर था। कुछ काल पश्चात समुद्रों के भीतर जीवन स्वरूपों का उद्‌भव हुआ, जो कार्बन डाइआक्साइड हजम कर आक्सीजन का प्रजनन करने लगे। इस आक्सीजन ने पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपरी भाग की ओर अग्रसर होना आरंभ कर दिया, जहां पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में इस आक्सीजन का विभाजन उसके एटमों में होने लगा और फिर इन एटमों ने संयुक्त हो, ओज़ोन का रूप धारण कर 'समतापमंडल' (स्ट्रैटोस्फियर) में सांद्रित होकर 'ओज़ोन परत' का निर्माण किया (चित्र-1)। कुछ काल पश्चात पृथ्वी के वायुमंडल में आक्सीजन की मात्रा बढ़ने पर आक्सीश्वसन जीवन स्वरूप जन्म लेने लगे (जो वर्तमान में सर्वत्र छाए हुए हैं), जिन्हें खतरनाक पराबैंगनी किरणों से बचाने में ओजोन परत एक छलनी समान सुरक्षा-कवच की भूमिका निभाती है।

ओजोन परत पृथ्वी के ऊपर 15 से 50 किलोमीटर ऊंचाई पर स्थित है और इसकी मोटाई लगभग 35 किलोमीटर है। ओज़ोन

आरंभ में जब पृथ्वी का उद्‌भव हुआ था, आक्सीजन गैस थी ही नहीं। कुछ काल पश्चात समुद्रों के भीतर जीवन स्वरूपों का उद्‌भव हुआ, जो कार्बन डाइआक्साइड हजम कर आक्सीजन का प्रजनन करने लगे। इस आक्सीजन ने वायुमंडल के ऊपरी भाग की ओर अग्रसर होना आरंभ किया, जहां पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में इसका विभाजन एटमों में होने लगा। फिर इन एटमों ने संयुक्त हो, ओज़ोन का रूप धारण कर 'समतापमंडल' (स्ट्रैटोस्फियर) में सांद्रित होकर 'ओज़ोन परत' का निर्माण किया।

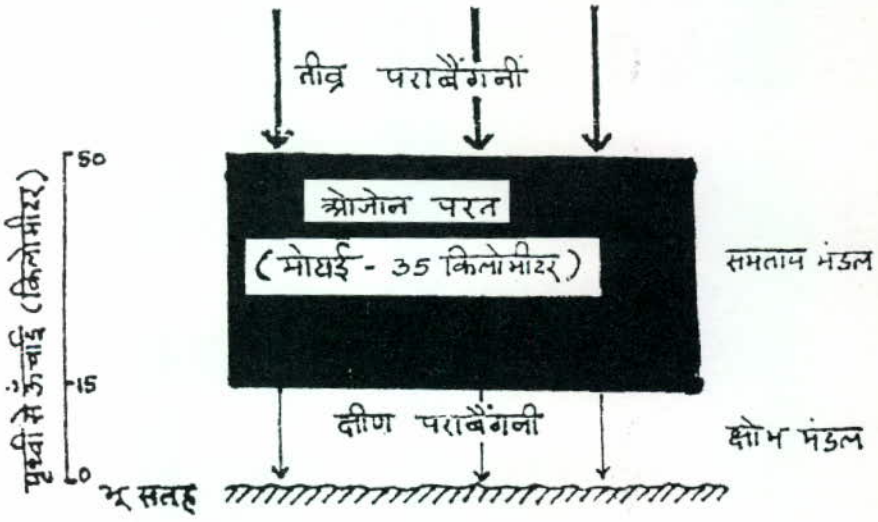

चित्र-1

का निर्माण सौर-विकिरण द्वारा निरंतर होता रहता है, जिसका स्तर 300 मिलियन टन प्रतिदिन है और इतनी ही मात्रा में यह प्राकृतिक रूप में नष्ट भी होती रहती है। इस परत के अंदर ओजोन की मात्रा किसी एक समय में इन दोनों प्रक्रियाओं का शेष भाग होती है और यह 2000 मिलियन टन के लगभग होती है। ओजोन परत के ऊपर आक्सीजन एटम रूप में रहती है क्योंकि पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में उसका विभाजन लगातार होता रहता है। लेकिन ओजोन परत के नीचे आक्सीजन मालिक्यूलर रूप में रहती है।

पृथ्वी के क्षोभ मंडल में प्रवेश के पूर्व सौर विकिरण में उपस्थित 0.30 माइक्रोन से कम और 0.70 माइक्रोन से उच्च तरंग-दैध्य के एक बड़े भाग का विघटन एवं अवशोषण समतापमंडल में व्याप्त ओजोन-परत द्वारा हो जाता है। इस क्रियाशीलता के फलस्वरूप पृथ्वी पर दिखाई पड़ने वाला सूर्य प्रकाश एक तरंग-समूह है जिसमें संपूर्ण दृश्य स्पेक्ट्रम के अलावा अदृश्य भाग की कुछ किरणों का समावेश होता है। उदाहरण के लिए नजदीकी पराबैंगनी (0.30 से 0.40 माइक्रोन) और नजदीकी इन्फ्रारेड (0.70 से 2.50 माइक्रोन)। यह उन खिड़कियों में एक है जो अंतरिक्ष की ओर खुलती है। दूसरी खिड़की को सूक्ष्मतरंग खिड़की कहा जाता है जिसमें वे सभी सौर किरणें सम्मिलित होती हैं जिनका तरंग-दैर्ध्य परिसर 1 मिलीमीटर से 30 सेंटीमीटर तक होता है। अर्थात सौर ऊर्जा विकिरण से ऊर्जा प्राप्ति का हमारा मुख्य स्रोत विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम का यही भाग है जो इन दोनों खिड़कियों के माध्यम से छनकर क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फियर) में प्रवेश करता है।

ओजोन परत एक सूर्यपट (सब-स्क्रीन) के समान कार्य करती है और जैविक (बाइलॉजिकल) दृष्टि से खतरनाक पराबैंगनी-बी (0.28 से 0.32 माइक्रोन) सौर-तरंगों के एक बड़े भाग का क्षोभमंडल में प्रवेश रोकने में समर्थ है। पराबैंगनी-बी का वह क्षीण-प्रवाह जो भू-सतह के वायुमंडल तक पहुंचता है, धूप-ताम्रता (सन बर्न), त्वचा कैन्सर, मोतियाबिन्द, आदि बीमारियां फैलाता है। फिर ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि पराबैंगनी-बी की मात्रा हमारे वायुमंडल में बढ़ने से फसलों का उत्पादन प्रभावित हो घटने लगता है एवं बीमारियों से बचने की हमारी प्रतिरोधक क्षमता भी कम होने लगती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि समतापमंडल में ओजोन-परत का निर्माण न हुआ होता, तो वर्तमान में हमारे आस-पास दिखाई देने वाले जीवन-स्वरूपों का उद्भव शायद ही संभव होता।

हाल के वर्षों में ऐसा देखा गया है कि अंटार्कटिका के ऊपर यह ओजोन परत अक्टूबर के महीने में बड़े नाटकीय ढंग से पतली होने लगती है और कुछ सप्ताह पश्चात फिर स्वाभाविक स्तर पर पहुंच जाती है। इस क्रिया के दौरान 1999-2000 में इस परत में 60 प्रतिशत तक कमी देखने में आई।

हाल के वर्षों में ऐसा देखा गया है कि अंटार्कटिका के ऊपर यह ओजोन परत अक्टूबर के महीने में बड़े नाटकीय ढंग से पतली होने लगती है और कुछ सप्ताह पश्चात फिर स्वाभाविक स्तर पर पहुंच जाती है। इस क्रिया के दौरान 1999-2000 में इस परत में 60 प्रतिशत तक कमी देखने में आई। अब चूंकि यह कमी पृथ्वी के एक छोटे स्थानीय भाग में देखने में आई, इसलिए बोलचाल की भाषा अपनाते हुए इसे 'ओजोन परत में छेद' के नाम से पुकारा जाता है।

ओज़ोन-परत पतली होने की प्रथम जानकारी 1974 में अमेरिकी वैज्ञानिक मेरियो मोलिना और एफ-शेरवुड रोलैण्ड ने अपने शोध पत्रों में प्रस्तुत की। पर इसका वास्तविक ज्ञान 1985 में ही हुआ। उपलब्ध आंकड़ों से ज्ञात होता है कि 1970 के दशक में अंटार्कटिका के ऊपर ओज़ोन परत में छेद प्रकट होने लगे थे और अब ये छेद यूरोप, अमेरिका, कनाडा, जापान एवं आस्ट्रेलिया के ऊपर भी प्रकट होने लगे हैं।

वर्तमान ग्लोबल परिदृश्य में ओज़ोन-परत लगभग सभी क्षेत्रों में पतली होती जा रही है। आस्ट्रेलिया के ऊपर तो 1960 के दशक से ही इसका स्तर 5-9 प्रतिशत की दर से कम हो रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि समतापमंडल में 1 प्रतिशत ओजोन कम होने पर क्षोभमंडल में पराबैंगनी विकिरण का प्रवेश 1-2 प्रतिशत बढ़ जाता है और चर्म रोगों में 5-6 प्रतिशत वृद्धि होने लगती है। इसीलिए विश्व भर में सबसे अधिक चर्म-रोगी आस्ट्रेलिया में पाए जाते हैं, जहां के दो-तिहाई निवासी किसी न किसी प्रकार के चर्म-कैंसर से ग्रस्त हो जाते हैं। इसी वजह से सभी आस्ट्रेलियन नागरिक कई प्रकार के चर्म-रोग प्रतिरोधक लोशन, क्रीम एवं तेलों का उपयोग अपनी त्वचा की सुरक्षा के लिए, धूप में निकलने से पूर्व, नियमित रूप से करने लगे हैं। इसका एक ज्वलंत उदाहरण है वहां के क्रिकेट खिलाड़ी, जिन्हें अपने-अपने चेहरों पर सफेद पट्टीनुमा रंग पोते खेल के मैदान में उतरते हम सब देखते हैं।

ओजोन में कमी का मुख्य कारक है 'क्लोरिन गैस'। लेकिन सौभाग्यवश क्लोरिन भारी गैस होने के कारण समतापमंडल की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच पाती जहां ओजोन परत विद्यमान है। घरेलू एवं सामूहिक रसायनों से उत्पन्न क्लोरिन गैस निचले वायुमंडल में विघटित हो वर्षा में बह जाती है। लेकिन कई ऐसे स्थाई (स्टेबल) और हल्के रसायन भी हैं, जो वाष्पशील स्वभाव के होते हैं एवं विघटित होने पर क्लोरिन का निर्माण करते

हैं। इन्हें 'ओज़ोन डिप्लीटिंग सबस्टेन्सेस' (ओ.डी.एस.) कहा जाता है। क्लोरो फ्लोरोकार्बन (सी.एफ.सी.), कार्बन टेट्रा क्लोराइड (सी.टी.सी.), मिथाइल क्लोरोफार्म और हाइड्रो क्लोरो फ्लोरो कार्बन (एच.सी.एफ.सी.) आदि कुछ ऐसे ओ.डी.एस. हैं जिनमें क्लोरिन होती है। फिर ब्रोमीन युक्त ओ.डी.एस. भी होते हैं, जैसे मिथाइल ब्रोमाइड, हाइड्रो ब्रामो-फ्लोरो कार्बन (एच.बी.एफ.सी.)। रेफ्रिजरेटर, एयरकंडिशनर, अग्नि शामक, ड्राइक्लीनिंग, इलैक्ट्रानिक उपकरणों की सफाई, कृषीय धूमकों (फ्यूमिगेंट), प्लास्टिक फोम/डिब्बों, आदि के निर्माण एवं उन्हें क्रियाशील बनाए रखने के लिए उपयोग किए गए एरोसोल नोदक (प्रापेलन्ट), विलायक (साल्वेन्ट) और रैफ्रिजरेन्ट्स इन गैसों के कारक हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि ओ.डी.एस. निचले वायुमंडल में दशकों तक दृष्टिगोचर सूर्य रोशनी से अप्रभावित, पानी में लगभग अघुलनशील एवं आक्सीडेशन प्रतिरोधक क्षमता सहित शांत रहकर कायम रहते हैं। लेकिन 18 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर जब 99 प्रतिशत हवा उनके नीचे रह जाती है, तब इनके स्थायीपन में परिवर्तन नजर आने लगता है। इस ऊंचाई पर सौर-स्पेक्ट्रम के तीव्र पराबैंगनी विकिरण के प्रभाव से इनका विघटन क्लोरिन एटम एवं अन्य अवशिष्टों में होने लगता है। इस प्रकार ओजोन-परत के भीतर क्लोरिन प्रजनन हो जाने पर एक एकल क्लोरिन एटम ओजोन के एक मालिक्यूल से संयुक्त होने के प्रयास के फलस्वरूप एक शृंखला अभिक्रिया (चेन रिएक्शन) गतिमान हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप एक क्लोरिन एटम लगभग 100,000 ओज़ोन मालिक्यूलों को तोड़कर वहां से हटा देता है। ऐसा होने का मूल कारण यह है कि इस शृंखला अभिक्रिया के अंत में भी क्लोरिन गैस का प्रजनन लगातार होता रहता है और ओजोन परत घटती रहती है। इसीलिए छोटी मात्रा में भी सी.एफ.सी. सांद्रण रोकना एक महत्वपूर्ण विषय है।

इन ओ.डी. एसों के अलावा 'ग्रीन हाउस गैस' (जी.एच.जी.) के प्रजनन-स्तर में लगातार होती वृद्धि भी ओज़ोन मात्रा को घटाती है। जी.एच.जी. प्रजनन के लिए उत्तरदायी स्रोत हैं— जल वाष्प, ऊर्जा प्राप्ति के लिए जीवाश्म ईंधन एवं लकड़ी के दहन से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) का उत्सर्जन, पशु मानव विष्टा एवं जैव सड़ाव से मिथेन उत्सर्जन, रासायनिक उर्वरकों के उपयोग एवं प्रत्येक दहन क्रिया से नाइट्रस आक्साइड (NO_2) प्रजनन और हाइड्रोकार्बन एवं नाइट्रोजन के आक्साइड के प्रभाव में क्षोम मंडल के भीतर मिथेन गैस निर्माण।

लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि यदि वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से जी.एच.जी. विद्यमान न होती तो पृथ्वी का वर्तमान तापमान 33० सेंटीग्रेड कम होता। इसलिए पृथ्वी में जीवन स्वरूपों के रहने लायक तापमान बनाए रखने में इन गैसों की उपस्थिति (एक स्तर तक) आवश्यक है।

दरअसल, वायुमंडल एक ग्रीन हाउस के समान कार्य करता है और पृथ्वी को उष्मा-रोधी कवच प्रदान करता है। यह ग्रीन-हाउस प्रक्रिया इस प्रकार कार्य करती है— सूर्य द्वारा आपतित विकिरण से प्राप्त सूक्ष्म तरंग दैर्ध्य का एक-तिहाई भाग परावर्तित हो जाता है और बाकी बचे भाग का अवशोषण वायुमंडल, समुद्र, बर्फ, भूमि एवं जन्तु-वनस्पति समूह कर लेते हैं। फिर भू-सतह द्वारा कुछ ताप वायुमंडल में संवेद्य-ताप (सेन्सिबल हीट) और वाष्पीय-वाष्पोत्सर्जन के रूप में निष्कासित होता है। इसके अलावा भू-सतह द्वारा लंबी तरंगदैर्ध्य विकिरण का ऊर्जा परावर्तन भी होता है, जिसका कुछ भाग वायुमंडलीय खिड़की को पारकर बाहर निकल जाता है एवं थोड़ा भाग वायुमंडल में समा जाता है (चित्र-2)।

इस प्रकार ऊर्जा-सांद्रण एवं लंबी तरंग-दैर्ध्य वाली इनफ्रारेड विकिरण उत्सर्जन के मध्य का संतुलन भी कई कारणों से बदल सकता है, जैसे— सूर्य ऊर्जा विकिरण आउटपुट में परिवर्तन, पृथ्वी परिक्रमा-पथ में सूक्ष्म परिवर्तन एवं ग्रीन हाउस प्रभाव। इनमें उत्तरजीविता के लिए ग्रीन-हाउस प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसको नियंत्रित स्तर पर बनाए रखने की क्षमता मानव के हाथ में है।

सूक्ष्मतरंग दैर्ध्य विकिरण तो वायुमंडल पार कर सकता है, पर लंबी तरंग दैर्ध्य विकिरण का कुछ भाग वायुमंडल के ऊपरी ठंडे भाग में उपस्थित 'ट्रेस गैसों' द्वारा अवशोषित हो जाता है। इन्हीं ट्रेस गैसों को 'जी.एच.जी.' नाम दिया गया है।

विश्व में औद्योगिक क्रांति आरंभ होने

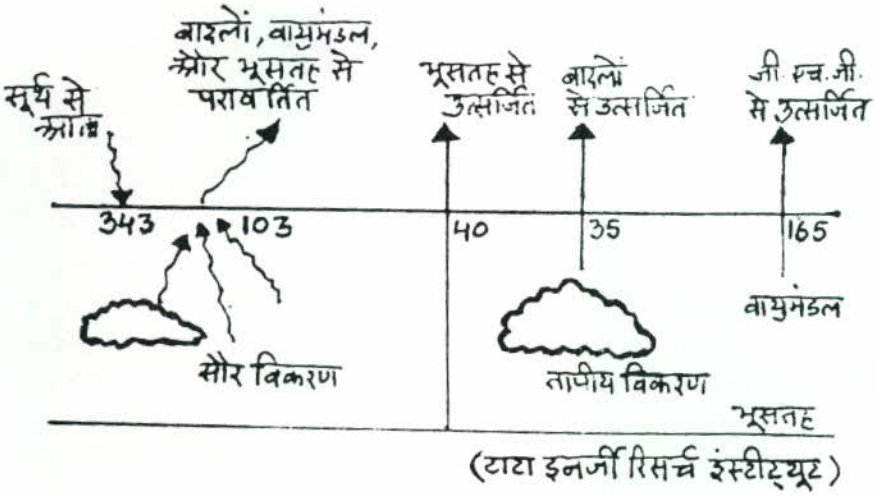

चित्र-2 : ऊर्जा संतुलन

के पश्चात से मानव गतिविधियों के फलस्वरूप प्राकृतिक रूप में विद्यमान जी.एच.जी. सांद्रण वायुमंडल में बढ़ने के साथ-साथ कई नए क्लोरोफ्लोरो कार्बनों का समावेश होने लगा है— विकसित देशों में अधिक एवं विकासशील देशों में कम मात्रा में। इन गैसों के प्रजनन में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव मुखर हो पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करने लगा है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार इन गैसों के प्रभाव में वर्ष 2100 तक पृथ्वी के तापमान में 1-3.5° सेंटीग्रेड वृद्धि होने की संभावना है। इस तापमान वृद्धि के फलस्वरूप कई अन्य परिवर्तन होंगे यथा— वृष्टि की मात्रा एवं पैटर्न में परिवर्तन, वनस्पति फैलाव एवं मृदा नमी में अंतर, ट्रापिकल चक्रावत तूफानों की तीव्रता में वृद्धि, ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ गलने व तापीय विस्तारण द्वारा समुद्री सतह की ऊंचाई में वृद्धि आदि।

समुद्री सतह की ऊंचाई बढ़ने पर समुद्रतटीय निचले इलाके पानी में डूब जाएंगे। पिछले 100 वर्षों में समुद्री पानी की ऊंचाई में 10-25 सेंटीमीटर वृद्धि मापी गई है और इस विषय में निर्मित प्रक्षेपणों से ज्ञात होता है कि आगामी 100 वर्षों में अर्थात वर्ष 2100 तक इसमें 46 सेंटीमीटर तक वृद्धि की संभावना है।

समुद्री पानी की सतह में 1 मीटर वृद्धि होने पर बांग्लादेश का 30,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पानी में डूब जाएगा। दूसरी ओर भारत के समुद्रतटीय इलाकों में रहने वाले 71 लाख नागरिक विस्थापितों की श्रेणी में आ जाएंगे।

तापमान वृद्धि के कारण पानी भंडार में कमी एवं नई बीमारियों का उद्भव होने लगेगा और कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा। फिर वे जीवन स्वरूप जो बदलते पर्यावरण के साथ ताल-मेल बैठाते हुए समयानुकूल अनुकूलन में असमर्थ होंगे विलुप्त हो जाएंगे। इस क्रिया में वनस्पतियां सबसे अधिक प्रभावित होंगी, क्योंकि उनकी स्थानान्तरण क्षमता सबसे कम समझी जाती है - 4 से 200 किलोमीटर प्रति शताब्दी। यही कारण है कि जी.एच.जी. नियंत्रण को वर्तमान में इतना महत्व दिया जा रहा है।

उल्लिखित चर्चा से स्पष्ट है कि ओजोन परत का विनाश मुख्यत: मानवजनित कारणों से हो रहा है। बीसवीं सदी में मानव ने औद्योगिक क्षेत्र में असाधारण सफलता अर्जित की है, जिसका मुख्य आधार रहा है अधिकाधिक ऊर्जा उत्पादनकर मानव के निजी लाभ के लिए उसका उपयोग। औद्योगीकरण की इस दौड़ में मानव इसके हानिकारक प्रभावों की अनदेखी करता रहा लेकिन 1960 के दशक से पर्यावरण संतुलन बनाए रखने की चिंता विश्व के सभी देशों में जागृत होने लगी और पर्यावरण प्रदूषण रोकथाम के विषय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया जाने लगा। पर्यावरण-प्रदूषण नियंत्रण के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाए गए हैं। उदाहरण के लिए—

अ) विकसित देशों में 1.1.1996 से सी.एफ.सी. उत्पादन निषेध कानून एवं उनके स्थान पर वैकल्पिक रसायनों का अनिवार्य उपयोग, जो महंगे होने के बावजूद पर्यावरण अनुकूल होते हैं। भारत, चीन आदि को इसमें वर्ष 2006 तक छूट दी गई है। अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों का मानना है कि भारत में सी.एफ.सी. का वर्तमान उत्पादन स्तर ओजोन-परत को प्रभावित नहीं करेगा।

1990 के दशक में लगभग 20 मिलियन टन सी.एफ.सी. प्रतिवर्ष वायुमंडल में छोड़ी जाती थी इस रोक के कारण वर्तमान में इसका स्तर 1 प्रतिशत दर से कम हो रहा है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि 1980 के दशक में सी.एफ.सी. का वायुमंडल में रिहा होने का स्तर 5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रहा था।

ब) जी.एच.जी. एवं अन्य विषैली गैसों का उत्सर्जन नियंत्रित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में आयोजित क्योटो-सम्मेलन (दिसम्बर 1998) की विज्ञप्ति के अनुसार भारत सहित 150 अन्य देश वचनबद्ध हैं कि वे वर्ष 2012 तक इन गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत कम करने का प्रयास करेंगे।

अब चूंकि भारत में सभी प्रकार की ऊर्जा आवश्यकताओं की आपूर्ति का प्रमुख आधार कोयला है, इसलिए उल्लिखित लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए भारत सरकार ने नए निर्देश जारी कर दिए हैं, जिसके अनुसार देश के सभी बिजली संयंत्रों को वर्ष 2001 से वाश किया 34 प्रतिशत राखयुक्त कोयला उपयोग करना अनिवार्य होगा। वाहन प्रदूषण में कमी लाने के लिए भारत में 'कम सल्फर युक्त (25 प्रतिशत) डीजल' का उत्पादन 1 अक्तूबर, 1999 से आरंभ कर दिया गया है। देश भर में जनवरी, 2000 से कम सल्फरयुक्त डीजल और फरवरी, 2000 से लैडविहीन (अनलेडेड) तेल उपयोग के लिए वितरित किया जाने लगा है।

इसके अलावा, सी.एफ.सी. एवं ओ.डी.एस. प्रजनन को नियंत्रित रखने के लिए भारत सरकार ने अगस्त, 2000 में गजट विज्ञप्ति द्वारा 'ओज़ोन डिप्लीटिंग नियम 2000' लागू कर दिया है। इसके अंतर्गत सभी उत्पादनों में सी.एफ.सी. उपयोग को वर्ष 2003 से निषिद्ध करार दिया गया है और ओ.डी.एस. उत्पादनों को नियंत्रित कर धीरे-धीरे समाप्त करने का प्रावधान किया गया है।

ओज़ोन-परत को सुरक्षित रखने में इस प्रकार के नियम मील का पत्थर साबित हो सकते हैं, बशर्ते विश्व के सभी देश इनका दृढ़ता से पालन करें। ❑

(लेखक कोल इंडिया लिमिटेड के सेवानिवृत्त मुख्य महाप्रबंधक (गवेषणा) तथा एक भूवैज्ञानिक हैं।)

प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश कितना सार्थक

○ रोली खन्ना

राज्य के तीन आधारभूत अंगों कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के पश्चात प्रेस का स्थान है। करीब पौने दो सौ वर्ष पहले प्रेस को राज्य का चौथा स्तंभ घोषित किया गया था। प्रेस या मीडिया आधुनिक लोकतंत्र प्रणाली का आधार है। साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था और उससे सम्बद्ध समस्त आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण तात्कालिक पत्र-पत्रिकाएं अर्थात् प्रिंट मीडिया था। इलेक्ट्रानिक मीडिया तो स्वाधीनता के बाद अस्तित्व में आया।

भारतीय समाज में अनेक जटिल प्रवृत्तियां गहरे तक जड़ जमा चुकीं हैं। सामाजिक और आर्थिक दशा में अनेक विसंगतियां और असमानताएं हैं, जिनका पलक झपकते समाधान नहीं हो सकता। आर्थिक क्षेत्र में विनिवेशीकरण, निजीकरण आज भी सार्वजनिक बहस का मुद्दा है। ऐसे में प्रिंट मीडिया में विदेशी पूंजी निवेश को अनुमति का औचित्य विचारणीय है।

केन्द्र सरकार ने अपने एक महत्वपूर्ण नीतिगत फैसले के तहत जून (2002) के अंतिम सप्ताह में मंत्रिमंडलीय बैठक के दौरान प्रिंट मीडिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अनुमति दे दी। समाचार एवं समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में 26 फीसदी और गैर-सरकारी समाचार-पत्र-पत्रिकाओं में 74 फीसदी एफ.डी.आई. को मंजूरी दी गई है। हालांकि सरकार ने इस मामले में कुछ सावधानियां बरतते हुए विदेशी निवेश पर कुछ शर्तें भी लगाई हैं।

औपनिवेशिक शासन काल में प्रिंट मीडिया दो वर्गों में बंटा था। एक तो अंग्रेज समर्थकों का वर्ग तथा दूसरा भारतीय विचार संस्कृति से ओतप्रोत वर्ग। भारतीय प्रिंट मीडिया औपनिवेशिक पक्षपात का शिकार रहा है। तब से लेकर आज तक, जब हम स्वतंत्रता की आधी सदी से ऊपर के वर्षों को जी रहे हैं, प्रिंट मीडिया को बहुआयामी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

समुद्रपारीय व्यावसायिक चुनौतियों को तो हम झेल रहे थे ऐसे में विदेशी पूंजी प्रवेश की अनुमति ने इसकी गुणवत्ता और विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। ऐसे में जबकि अंग्रेजी मीडिया में कुलीन संस्कृति छाई है, लोकतंत्र का यह चौथा स्तंभ क्या विदेशी पूंजी प्रवाह के दोषों से खुद को अनछुआ रख सकेगा?

प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश का मुद्दा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही विवादित रहा है। तात्कालिक परिवेश में प्रश्न सामने था कि दैनिक या निश्चित अवधि में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं को विदेशी अधिकार में देना क्या उचित होगा? सन् 1954 में न्यायमूर्ति जी.एस. राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में बने प्रथम प्रेस आयोग ने स्पष्ट रूप से सिफारिश की थी कि 'विदेशी प्रेस बैनरों को भारत में समाचार-पत्र या पत्रिकाएं चलाने की अनुमति न दी जाए, प्रेस के स्वस्थ लोकतांत्रिक विकास के लिए तथा राष्ट्रीय हितों के लिए ऐसा करना अत्यंत आवश्यक है।' 1955 में पंडित नेहरू की कैबिनेट ने एक प्रस्ताव पारित किया था जिसमें कहा गया था कि किसी भी विदेशी स्वामित्व वाले प्रेस को समाचार-पत्र या

भारतीय समाज में अनेक जटिल प्रवृत्तियां गहरे तक जड़ जमा चुकीं हैं। सामाजिक और आर्थिक दशा में अनेक विसंगतियां और असमानताएं हैं, जिनका पलक झपकते समाधान नहीं हो सकता। आर्थिक क्षेत्र में विनिवेशीकरण, निजीकरण आज भी सार्वजनिक बहस का मुद्दा है। ऐसे में प्रिंट मीडिया में विदेशी पूंजी निवेश की अनुमति का औचित्य विचारणीय है।

पत्रिका निकालने की अनुमति भविष्य में नहीं दी जाएगी। 1956 में बने प्रेस कौंसिल अधिनियम में भी प्रावधान है कि किसी भी विदेशी समाचार-पत्र को भारत की भूमि पर प्रकाशित करने की अनुमति न दी जाए।

संविधान के अनुच्छेद 19(1)क में भारत के सभी नागरिकों को वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है तथा 19(1)छ के तहत सभी नागरिकों को भी पेशा या व्यवसाय करने की छूट है। यही दो प्रावधान प्रेस की स्वतंत्रता को इंगित करते हैं, किन्तु अनुच्छेद 19(2) में यह भी वर्णित है कि राष्ट्र की अखंडता, सम्प्रभुता और सुरक्षा के मद्देनजर इन अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है। चूंकि अनुच्छेद 19 के तहत दिए गए वाणी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार केवल भारतीय नागरिक के लिए है न कि विदेशी नागरिकों के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में, 1958 में वीरेन्द्र बनाम स्टेट ऑफ पंजाब के मुकदमे में भी यही मत दिया था कि अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिए हैं, विदेशी नागरिकों के लिए नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब विदेशियों को अभिव्यक्ति तथा पेशा एवं व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता का संवैधानिक अधिकार नहीं है तो उन्हें स्वदेश में समाचार-पत्र या पत्रिका के प्रकाशन की अनुमति देने का भी कोई औचित्य नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त फैसले के बाद लगा कि प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश के मुद्दे पर बहस हमेशा के लिए समाप्त हो गई। किन्तु नब्बे के दशक में उदारीकरण के अनुकरण के समय भूमंडलीकरण के चलन को आधार बनाकर एक बार फिर यह मुद्दा जीवंत हो उठा। विदेशी पूंजी के लोभ ने चंद समाचार-पत्रों के मालिकों को विदेशी स्वामित्व वाले अखबारों के साथ मिलकर अखबार निकालने की मांग के लिए प्रेरित किया। इसी मांग के तहत नरसिंह राव सरकार ने 1994 में एन.के.पी. साल्वे और चन्दूलाल चन्द्राकर की अध्यक्षता में प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश के विचारार्थ एक कमेटी का गठन किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में विदेशी पूंजी निवेश की सिफारिश की। साल्वे समिति ने अपनी रिपोर्ट में विदेशी पूंजी निवेश प्रावधान लागू करने के लिए 1956 में बने प्रेस काउंसिल अधिनियम के उस प्रावधान को हटाने की सिफारिश की थी जिसके तहत विदेशी अखबारों और संचार माध्यमों के देश में प्रवेश पर रोक लगाई गई थी। किन्तु प्रबुद्ध वर्गों के प्रबल विरोध के चलते विदेशियों को प्रिंट मीडिया में प्रवेश की अनुमति नहीं दी गई।

विदेशी निवेश की अनुमति के साथ ही यह शर्त भी लगाई गई है कि विदेशी ईक्विटी के अलावा 74 फीसदी अंशधारिता का स्वामित्व बिखरा हुआ नहीं होना चाहिए। ऐसा न हो, इसलिए एक भागीदार के पास कम से कम 27 फीसदी ईक्विटी होना अपरिहार्य माना गया है।

प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश के मुद्दे पर बहस की यह निरंतरता कभी धीमी और कभी तेज चाल के साथ जारी रही। वर्तमान सरकार ने चर्चा को साकार रूप देते हुए यह अनुमति प्रदान कर दी। स्वीकृति की मोहर लगाते हुए सरकार ने स्पष्ट किया कि प्रिंट मीडिया में प्रबंध तंत्र और संपादकीय पर विदेशियों का कोई अधिकार नहीं होगा। यह पूरी तरह से भारतीय स्वामित्व में रहेगा। इसके साथ ही सरकार के इस निर्णय से भारतीय न्यूज एजेंसियों की अधिकारिता अप्रभावित रहेगी, तथा संवाद समितियों 1956 के कैबिनेट के फैसले से ही निर्देशित होती रहेंगी।

विदेशी स्वामित्व की शोषक प्रवृत्ति न लागू होने पाए, इसके लिए समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के निदेशक-मंडल में तीन-चौथाई भारतीयों का होना अनिवार्य किया गया है। साथ ही फैसले में कहा गया है कि मीडिया के सभी प्रमुख पदों पर भी भारतीय ही नियुक्त किए जाएंगे, विदेशी नहीं। इन पदों में प्रमुख संपादक, स्थानीय संपादक जैसे महत्वपूर्ण पद शामिल हैं। संपादकीय कर्मचारियों में तीन-चौथाई भारतीयों की नियुक्ति अनिवार्य है। प्रबंधकीय एवं संपादकीय नियंत्रण भारतीय हाथों में सुरक्षित रखने की व्यवस्था के तहत इसमें बड़ी भागीदारी जो कि 26 प्रतिशत से अधिक होगी, भारतीयों के हाथों में रहेगी और किसी भी स्थिति में शेयर भागीदारी के इस स्वरूप को केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना बदला नहीं जा सकेगा।

विदेशी निवेश की अनुमति के साथ ही यह शर्त भी लगाई गई है कि विदेशी ईक्विटी के अलावा 74 फीसदी अंशधारिता का स्वामित्व बिखरा हुआ नहीं होना चाहिए। ऐसा न हो, इसलिए एक भागीदार के पास कम से कम 27 फीसदी ईक्विटी होना अपरिहार्य माना गया है।

अन्य बाध्यताओं के तहत भागीदार के लिए भारत का निवासी होने की शर्त रखी गई है। इसके अतिरिक्त विदेशी निवेश के बाद कंपनी में प्रबंधन के अधिकारों को विदेशी भागीदार को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। शेयरधारिता के तरीकों में परिवर्तन यदि आवश्यक हुआ तो इसके लिए सूचना प्रसारण मंत्रालय की पूर्वानुमति आवश्यक होगी।

प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश का समर्थन करते हुए कहा गया है कि विदेशी समाचार-पत्रों के आने से प्रतियोगिता बढ़ेगी। प्रतियोगिता का सामना कर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए देशी अखबारों को गुणवत्ता बढ़ाने और

विश्वसनीयता कायम रखने की प्रेरणा मिलेगी। इससे प्रसार-संख्या एवं ग्राहक-संख्या में तेजी से वृद्धि होगी। संयुक्त स्वामित्व के कारण विदेशियों के स्रोतों से वैश्विक स्तर के विज्ञापन मिलेंगे, जिससे अच्छी आमदनी होगी। यदि प्रिंट मीडिया में विदेशी निवेश का आमंत्रण मिलता है तो विदेशी निवेशक प्रेरित होकर अन्य क्षेत्रों में भी निवेश के लिए आगे आएंगे। इससे उत्पादकता एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

जहां तक प्रिंट मीडिया में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति से स्वदेशी की सुरक्षा का प्रश्न है, उसका ध्यान रखते हुए सरकार ने प्रिन्ट मीडिया में निवेश प्रस्तावों को मंजूर किए जाने से पहले विदेशी निवेशक के रिकार्ड की गहन जांच की अनिवार्यता घोषित की है। जांच की जिम्मेदारी गृह मंत्रालय को सौंपी गई है। यानी कि सरकार का कहना है कि देशी अखबारों को कोई खतरा नहीं। बल्कि उन्हें उच्च तकनीक, उच्च गुणवत्ता एवं उच्च वेतन का लाभ प्राप्त होगा।

सभी सरकारी तर्कों को हम बेबुनियाद नहीं कहते, किंतु यह तस्वीर का सिर्फ एक रुख है। भूमंडलीकरण के इस दौर में भी राष्ट्रीय संप्रभुता, सांस्कृतिक अस्मिता और स्थानीय स्वाभिमान का अपना महत्व है, वरना दुनिया में न इतने देश होते, न ही विभिन्नताएं। जब तक इन अवधारणाओं की प्रासंगिकता को समाज स्वीकार करता रहेगा तब तक हर देश और हर समाज की आकांक्षाओं की वास्तविक और निर्भीक अभिव्यक्ति के लिए पूरी तरह स्वायत्त मीडिया की जरूरत होगी।

इस बात से किसी को एतराज नहीं हो सकता कि प्रिंट मीडिया का स्वरूप अन्य संचार साधनों से ही नहीं बल्कि अन्य उद्योगों से भी भिन्न है। मीडिया में भी कई दिग्गज मीडिया को एक 'प्रोडक्ट' की तरह मानते हैं एवं इसकी तुलना महज एक साबुन की बट्टी से करते हैं। इसका कारण है मानसिकता विशेष। दरअसल वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप कई ऐसी विदेशी कंपनियां इस क्षेत्र में आईं जो प्रमुख रूप से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से सम्बद्ध थीं, जिसका असर उनकी मीडिया सम्बद्धता पर भी पड़ा। अखबार जैसे संवेदनशील विषय को उपभोक्ता सामग्री के तुल्य नहीं माना जा सकता। हमारे देश की एकता, अखंडता एवं सुरक्षा को प्रभावित करता है चतुर्थ स्तंभ। इलेक्ट्रानिक मीडिया के इस युग में प्रिंट मीडिया का दायरा काफी व्यापक नहीं है। फिर भी इसका प्रभाव व्यापक और स्थाई है।

एक आलेख या टिप्पणी का प्रभाव कभी-कभी क्रांति का कारण बन जाता है। कहीं और न जाकर अपने ही देश में देखते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन काल में विभिन्न नेताओं ने जनचेतना के प्रसार और प्रचार के लिए कलम की ताकत को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया था जिससे भयभीत अंग्रेज सरकार को 'प्रेस एक्ट' बनाकर भारतीय समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर रोक लगानी पड़ी थी। प्रिंट मीडिया की इस चिर-परिचित ताकत के कारण ही अधिकांश विकसित और उदार देश अभी तक अपने यहां विदेशी वर्चस्व से बचते रहे हैं।

आखिर क्यों बहुराष्ट्रीय कंपनियां अन्य उद्योगों की अपेक्षा प्रिंट मीडिया जैसे कम लाभ वाले क्षेत्र में निवेश को लालायित रहती हैं? अन्य उद्योग क्षेत्रों की तुलना में पत्र-पत्रिका उद्योग, वो भी इलेक्ट्रानिक युग में, कोई बहुत बड़ा उद्योग नहीं है। प्रेस के माध्यम से राजनीतिक सत्ता व्यवस्था पर कारगर नियंत्रण स्थापित करना उनका परोक्ष उद्देश्य होता है, जिससे बाद में मनमाने तरीके से आर्थिक हितों को साधा जा सके। प्राय: बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एकमात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। ऐसे में इस कम लाभप्रद क्षेत्र में घुसने की अभिलाषा संदेह पैदा करती है।

विदेशी पूंजी निवेशक के समर्थकों का यह तर्क कि इससे अंतर्राष्ट्रीय खबरों तक भारतीय पाठकों की पहुंच बनेगी, गले नहीं उतरता। दुनिया की तीन-चार बड़ी समाचार एजेंसियां ही प्राय: किसी भी देश के मीडिया को अंतर्राष्ट्रीय खबरें उपलब्ध कराती हैं। इन खबरों का चयन और प्रसारण भी राजनीतिक प्रभावों से अछूता नहीं है। ऐसे में यदि इस चयन और नियंत्रण के अधिकार को भी हम विदेशियों को देना चाहते हैं तो निवेश के पक्षधरों की 'नेकनियति' पर शक जरूरी हो जाता है।

विदेशी निवेशकों की सहायता से सूचना सर्वव्यापी और सर्वसुलभ होगी, यह तर्क इंटरनेट युग में हास्यास्पद लगता है। इंटरनेट के माध्यम से भारतीय अखबार, विदेशी अखबारों से साभार महत्वपूर्ण सामग्रियों का प्रकाशन करते ही हैं। ऐसे में जो लोग भारतीय पाठकों की वंचना का रोना रोकर विदेशी पूंजी का समर्थन कर रहे हैं, उनके इस पक्ष को किस आधार पर मान्यता दी जा सकती है?

देश के अन्य क्षेत्रों में विदेशी पूंजी के प्रवेश को लेकर जैसा उत्साह है उसे देखते हुए एकबारगी तो प्रिंट मीडिया में विदेशी पूंजी का समर्थन जायज दिखता है। लेकिन तमाम पहलुओं पर सोच-विचार के बाद अखबारों में विदेशी पूंजी के आगमन को शुभ नहीं कहा जा सकता। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अतीत में दुनिया के कई नामों अखबारी समूहों में इस तरह के प्रयोगों के क्या नतीजे रहे हैं। शुरू में उनके यहां भी तथाकथित सारे संरक्षणात्मक उपाय किए गए थे। लेकिन अन्तत: समस्त संपादकीय एवं नीतिगत अधिकार भी उनके हाथों से खिसक गए।

अत: गलत दलीलों के आधार पर विदेशी पूंजी का समर्थन करना अपनी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक अस्मिता के साथ छल करने जैसा है। जब तक राष्ट्रीय संप्रभुता की अस्मिता कायम है, देशज प्रिंट मीडिया का औचित्य ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

भाषिक अस्मिता का संघर्ष और प्रशासनिक हिंदी

○ हरीश कुमार सेठी

मानव-अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम 'भाषा' का विकास उसके प्रयोक्ताओं पर निर्भर करता है। प्रयोग का यह स्तर मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी। प्रयोग का प्रचलन बढ़ने के साथ-साथ भाषा, सामान्य-जन की भाषा बनती चली जाती है। लेकिन हो सकता है और कि किसी व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त भाषा अन्य को कठिन अथवा सरल प्रतीत हो। भाषा की कठिनता अथवा सरलता का यह बोध प्रयोक्ता के भाषिक ज्ञान और उसकी वैचारिक-बौद्धिक क्षमता पर आधारित होता है। यह स्थिति आम बोलचाल की भाषा के संदर्भ में तो सार्थक है ही, कार्यालयों में प्रयुक्त भाषा के परिप्रेक्ष्य में भी सटीक है।

प्रत्येक मनुष्य अपने निजी गुणों के कारण अन्य लोगों से अपनी अलग पहचान बनाए रखता है। इस अलग पहचान से ही व्यक्ति के वैशिष्ट्य का बोध होता है। यही आधार मनुष्य द्वारा प्रयुक्त या लिखी जाने वाली भाषा पर भी लागू होता है। कार्यालयों में जिस भाषा का इस्तेमाल किया जाता है वह कार्यालयी भाषा है। प्रत्येक कार्यालय में सामान्यत: भिन्न भाषा-भाषी के लोग काम करते हैं और उनकी योग्यताएं एवं क्षमताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उनके भाषा-ज्ञान के स्तर पर भी भिन्नता का दृश्य अवलोकित किया जा सकता है। संविधान में हिंदी को संघ सरकार की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है और कार्यालयी कार्यों में इसके सहज प्रयोग, प्रचार और प्रसार को सिद्धांत रूप में बढ़ावा देने की बात कही गई है। हालांकि यह सही है कि सरकारी कार्यालयों में कार्यरत सभी कर्मचारियों की मातृभाषा हिंदी नहीं है और न ही उन सबके शिक्षण-प्रशिक्षण का माध्यम हिंदी है। ऐसे में सरकारी काम-काज में प्रयुक्त होने वाली हिंदी को ऐसा रूप दिया जाना अपेक्षित है जो हिंदी-भाषी कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने के लिए तो उत्साहित करे ही साथ ही अहिंदी-भाषी कर्मचारियों को भी अपनी ओर आकर्षित करे।

प्रशासनिक काम-काज में प्रयुक्त होने वाली हिंदी का स्वरूप साहित्यिक अथवा ज्ञानपरक हिंदी से बिल्कुल भिन्न है। इस भिन्नता को शैली-प्रवाह एवं संरचना के स्तर पर देखा जा सकता है। साहित्यिक भाषा भाव और व्याकरण-प्रधान होती है। दूसरे शब्दों में, साहित्यिक भाषा में अनेकार्थी, लाक्षणिक, व्यंजनाश्रित एवं प्रतीकात्मक भाषिक प्रयोगों की पूरी-पूरी संभावना होती है। साहित्य में भाषा द्वारा विचारों को जहां अभिधा शब्द-शक्ति द्वारा (यानी सीधे ढंग से) व्यक्त किया जा सकता है वहीं इसे लक्षणा अथवा व्यंजना शब्द-शक्ति या घुमा-फिराकर भी व्यक्त किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्यिक भाषा का लालित्यपूर्ण एवं सांकेतिक प्रयोग भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त, साहित्यिक हिंदी में संस्कृत शब्दों की अधिकता या फिर परिष्कृत-परिमार्जित शब्दावली का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हो सकता है। इसके विपरीत ज्ञानपरक साहित्य में गूढ़ता एवं विवेचन की प्रधानता होती है।

प्रशासनिक काम-काज में प्रयुक्त होने वाली हिंदी का स्वरूप साहित्यिक अथवा ज्ञानपरक हिंदी से बिल्कुल भिन्न है। उसमें क्लिष्टता, जटिलता और दुरूहता नहीं होनी चाहिए। इसका सरल-स्पष्ट रूप सबको समझ में आना चाहिए क्योंकि 'राजभाषा' का संबंध केवल हिंदी-भाषियों से न होकर अहिंदी-भाषियों और हिंदी का कम ज्ञान रखने वालों से भी है।

ज्ञान साहित्य का यह गुण प्रयुक्त भाषा पर भी अपना प्रभाव छोड़ता है जबकि प्रशासनिक हिंदी साहित्यक और ज्ञानपरक हिंदी की तुलना में बिल्कुल भिन्न है। सरकारी काम-काज में प्रयुक्त भाषा में प्रयुक्त शब्दों की शक्ति लक्षणा अथवा व्यंजना न होकर अभिधात्मक शैली में होनी चाहिए। प्रशासनिक हिंदी का अर्थ की दृष्टि से सरल-स्पष्ट और सुनिश्चित-एकार्थक होना नितांत आवश्यक है। उसमें क्लिष्टता, जटिलता और दुरूहता नहीं होनी चाहिए। इसमें किसी भी बात अथवा विचार को घुमा-फिराकर व्यक्त न करके स्पष्ट-सटीक शब्दों में प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित होता है। जिसमें द्वि-अर्थकता अथवा अनेकार्थता का कोई स्थान नहीं होता। इसका सरल-स्पष्ट रूप सबको समझ में आना चाहिए क्योंकि 'राजभाषा' का संबंध केवल हिंदी-भाषियों से न होकर अहिंदी-भाषियों और हिंदी का कम ज्ञान रखने वालों से भी है।

प्रशासनिक हिंदी आम बोलचाल की भाषा से भी भिन्न है। बोलचाल में प्रयुक्त भाषा का रूप निश्चित तौर पर साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रंथों में प्रयुक्त भाषा के समान नहीं होता। बोलचाल की भाषा का आधार मानव जीवन है। बोलचाल की हिंदी में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भी अधिक व्यवहृत किया जाता है। आम बोलचाल की भाषा अनौपचारिक, सहज-सरल, अकृत्रिम एवं व्यक्ति प्रधान होती है। यह जनभावना की संवाहक भाषा होती है। इसे स्वत: प्रवाहित निसर्ग धारा भी कह सकते हैं। प्रशासनिक हिंदी स्वयं में औपचारिक एवं कार्यालयिण संस्कार का पुट लिए होती हैं इस प्रकार आम बोल-चाल की भाषा का आधार अगर जीवन है तो राजभाषा का आधार प्रशासन है। अपने रिश्ते-नातेदारों एवं मित्रों आदि के साथ जैसी भाषा का इस्तेमाल हम करते हैं और उन्हें जिस भाषा-शैली में पत्रादि लिखते हैं वैसी ही भाषा-शैली का प्रयोग हम सरकारी पत्र-व्यवहार में नहीं करते। आम बोलचाल में भले ही हम 'मित्र' शब्द के स्थान पर 'यार/दोस्त' और 'जल' शब्द के स्थान पर 'पानी' आदि शब्द प्रयुक्त कर लें किंतु प्रशासनिक हिंदी में 'संस्तुति', 'अधोहस्ताक्षरी', 'अनुमोदनार्थ' आदि शब्दों को विशिष्ट अर्थ में ही प्रयुक्त करना होगा। प्रशासनिक हिंदी में जहां आवश्यकता हो, पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त समानार्थी शब्दों का प्रयोग भी प्रशासन के क्षेत्र में औपचारिक और सुनिश्चित होता है। उदाहरण के लिए 'स्वीकृति' और 'अनुमति' शब्दों

प्रशासनिक हिंदी का अर्थ की दृष्टि से सरल-स्पष्ट और सुनिश्चित-एकार्थक होना नितांत आवश्यक है। उसमें क्लिष्टता, जटिलता और दुरूहता नहीं होनी चाहिए। इसमें किसी भी बात अथवा विचार को घुमा-फिराकर व्यक्त न करके स्पष्ट-सटीक शब्दों में प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित होता है।

को लिया जा सकता है जिन्हें प्रशासनिक काम-काज के दौरान अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। प्रशासनिक हिंदी में एक विशेष प्रकार की गंभीरता होती है। प्रशासनिक हिंदी की शैली एवं संरचना कथ्य के अनुरूप विशिष्ट स्वरूप लिए हुए होती है। उदाहरणार्थ कार्यालयी भाषा (हिंदी) में 'मसौदा' सक्षम अधिकारी के समक्ष 'अनुमोदनार्थ' प्रस्तुत किया जाता है, स्वीकृति' हेतु नहीं। इस तरह कार्यालयों में मामला 'आदेशार्थ' प्रस्तुत किया जाता है, 'आज्ञार्थ' नहीं।

सरकारी नीतियों, विचारों और उनके अनुशीलन-अनुपालन का सबल माध्यम राजभाषा ही होती है। अगर वह प्रभावी, सटीक और सामर्थ्यवान नहीं होगी तो सरकारी नीतियों-विचारों का सार्थक अनुपालन नहीं हो पाएगा। इसलिए राजभाषा में एक गरिमा की अपेक्षा होती है। यह गरिमा सटीक शब्दों और उनके सार्थक प्रयोग से ही संभव है। इस कारण राजभाषा एक निर्धारित और संशोधित भाषा होती है। राजभाषा का यह वैशिष्ट्य ही उसे राजभाषा का दर्जा दिलाए रखता है। कार्यालयी भाषा जन-सामान्य के साथ निरंतर संवाद की एक स्वस्थ प्रक्रिया की बोधक है। राजभाषा की शैली और संरचना का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है; उसमें एक विशेष प्रकार की गंभीरता होती है। विभिन्न कार्यों की कार्य-शैली के विभिन्न स्तर होने के कारण की जाने वाली कार्रवाईयां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। इनके लिए भिन्न-भिन्न शब्द निर्धारित किए जाते हैं। अपने स्वरूप में ये शब्द पारिभाषिक होते हैं। प्रशासनिक विषयों से संबंधित सरकारी पत्र-व्यवहार, प्रशासन, न्याय व्यवस्था और सार्वजनिक कार्यों से संबंधित है। इनमें राजभाषा का प्रयोग किया जाता है। सरकारी काम-काज को निपटाने वाले और शासन-तंत्र के तौर-तरीकों, नियमों-कानूनों आदि से परिचित अधिकारी-कर्मचारी प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। दूसरी ओर, शासन-तंत्र का संबंध देश के नागरिकों और आम जनता से भी होता है। इस कारण राजभाषा सरकारी काम-काज, विधि-प्रशासन से लेकर आम आदमी तक से संबंधित होती है।

प्रशासनिक कार्य विधि का साहित्य रीति-नीति से बद्ध होता है। इस साहित्य से शासन-तंत्र का अधिकारी-कर्मचारी वर्ग तो परिचित होता है किंतु आम आदमी को स्पष्ट और सुनिश्चित अर्थ संप्रेषण भी अपेक्षित होता है। इसलिए कार्यविधि साहित्य की रीति-नीतिबद्धता की आड़ में प्रशासनिक हिंदी को क्लिष्ट रूप देना उचित नहीं है उसे

क्लिष्टता से बचाना अपेक्षित है। हिंदी भाषा के संदर्भ में इस क्लिष्टता का आधार संस्कृत-भाषाकरण अथवा अत्यधिक औपचारीकरण माना जाता है। संस्कृत के शब्दों की भरमार, हिंदी को संस्कृतनिष्ठ रूप प्रदान कर देती है जबकि औपचारीकरण द्वारा भाषा बोझिल बन जाती है। प्रश्न उठा है कि क्लिष्टता की दुहाई देकर उसमें संस्कृत शब्दों के स्थान पर उर्दू शब्दों का प्रतिस्थापन कर उसे खिचड़ी भाषा बना देना कहां तक तर्कसंगत है? वस्तुतः इस तरह की स्थितियां बनाकर सरल और कठिन हिंदी के प्रश्न को हवा दी जाती है। इस संबंध में डा. पांडुरंग राव का यह कहना विचारणीय है कि 'आजकल सरल हिंदी के संबंध में काफी चर्चा हो रही है और इस संबंध में जनसाधारण और शिक्षित समाज में काफी मतभेद है। कारण यह है कि उत्तर में जिस भाषा को सरल या आसान माना जाता है, वही दक्षिण के पढ़े-लिखे आदमी के लिए दुर्बोध बन जाती है, किसी को संस्कृतनिष्ठ भाषा में समझने में सुविधा होती है तो किसी को उर्दू की रोजमर्रा की ताजगी में अधिक आनंद आता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना पर्यावरण होता है। भाषा भी पर्यावरण का एक अंग है।'

दूसरी ओर यह भी देखा गया है कि अन्य भाषा के शब्दों के चलन के बावजूद हिंदीकरण की आड़ में, गढ़े गए बनावटी शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं जिससे भाषा में हास्यास्पदता आ जाती है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के 'Agent' शब्द का समतुल्य हिंदी शब्द 'अभिकर्ता' है। किंतु चलन में लिप्यंतरित रूप अर्थात् 'एजेंट' शब्द है। इसी प्रकार, टंकण-यंत्र, श्रुतलेखन, धनादेश, यात्रा-पत्र, दूरभाष, पारपत्र आदि शब्द लिए जा सकते हैं। इनके स्थान पर क्रमशः टाइपराइटर, डिक्टेशन, चेक, टिकट, टेलीफोन, पासपोर्ट आदि अंग्रेजी शब्द बोलचाल एवं लिखित रूप में प्रयुक्त होते हैं। यह सही है कि हमारी भाषा में बहु-प्रचलित शब्द विद्यमान न हों तो उसके लिए प्रचलित विदेशी शब्द स्वीकार्य होने चाहिए। भाषा की प्रयोजनशीलता के संदर्भ में स्वीकार्य तथ्य यही है कि बोझिल-बनावटी प्रतीत होने वाले शब्दों के स्थान पर प्रचलित शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया जाए। किंतु उसकी भी एक सीमा होनी चाहिए।

संवैधानिक प्रावधानों के कारण प्रशासन के क्षेत्र (कार्यालयी साहित्य) में द्विभाषिकता की स्थिति व्याप्त है। किंतु कार्यालयों में प्रयुक्त हिंदी, मौलिक हिंदी न होकर 'अनूदित' हिंदी है। अनुवाद की भाषा का प्रभाव हिंदी भाषा में वाक्य-रचना के स्तर पर देखा जा सकता है। हम कार्यालयी हिंदी को अनूदित हिंदी न बनाकर हिंदी की मूल प्रकृति को बनाए रख सकते हैं। वैसे भी किसी राजभाषा को बनावटीपन से बचाने का कार्य उस भाषा की व्याकरणिक संरचना और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की रक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। शब्द-प्रकरण में भाषा की व्याकरणिक संरचना संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, अव्यय, विभक्ति, भाषिक लिंग-व्यवस्था और क्रिया आदि पर निर्भर करती है। वाक्य-प्रकरण में वाक्यों का पद-क्रम, पदबंध, मुहावरे, पुनरुक्ति आदि आते हैं।

प्रशासनिक हिंदी में अटपटेपन का मूल कारण यही है कि प्रशासनिक कार्यों में हिंदी की व्याकरणिक संरचना पर ध्यान नहीं दिया जाता। हिंदी पर अंग्रेजी का यह प्रभाव विविध स्तरों पर देखा जा सकता है। 'चैरिटी', 'रेस', 'लीडर', 'पर्सनल', 'रिकॉर्ड', 'इंस्ट्रक्शन', 'ऑर्डर', 'राउंड', 'क्लास', 'स्कूल' आदि शब्द इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हालांकि इनके लिए हमारी भाषा में बहुप्रचलित शब्द विद्यमान हैं तथापि हम अंग्रेजी शब्दों को लिप्यंतरित रूप में प्रयुक्त करना ही उचित समझते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी पदबंधों का हिंदी में अनुवाद अंधविश्वासी शैली में किया जाता है। यहां अंधविश्वासी शैली से अभिप्राय यह है कि अनुवाद करते समय यह ध्यान नहीं रखा जाता कि अनूदित पदबंध हिंदी भाषा की प्रकृति के अनुकूल हैं या नहीं। उदाहरण के लिए देखने में आता है कि 'I have won his confidence' का अनुवाद 'मैंने उसका विश्वास जीत लिया है' किया जाता है। अंग्रेजी वाक्य में आए 'won' शब्द का हिंदी पर्याय यद्यपि 'जीतना' है तथापि विश्वास के संदर्भ में 'won' का अर्थ 'जीत' से न होकर 'प्राप्त करने' से है। इसलिए उक्त वाक्य का हिंदी अनुवाद 'मैंने उसका विश्वास प्राप्त कर लिया है' होना चाहिए। इसके अतिरिक्त 'In other words', 'In one word', 'can be disposed off', 'examples of this nature,' 'In due course' आदि ऐसे सैकड़ों अंग्रेजी पदबंध हैं जिनका हिंदी की प्रकृति का ध्यान रखे बिना धड़ल्ले से शब्दानुवाद कर दिया जाता है।

व्याकरणिक संरचना के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की ओर ध्यान देना भी अपेक्षित है क्योंकि 'What can I do for you?' वाक्य का यदि भारतीय और विशेष तौर पर किसी लड़की के संदर्भ में अनुवाद किया जाए तो वह 'मैं आपके लिए क्या कर सकती हूं?' न होकर 'मेरे योग्य कोई सेवा' या 'कहिए, क्या आज्ञा है?' जैसा शिष्ट वाक्य हो सकता है। इसी प्रकार, अंग्रेजी में भले ही आप 'Excuse me, I want a ticket' कहें किंतु हिंदी में 'क्षमा कीजिए, एक टिकट चाहिए' के स्थान पर 'कृपया एक टिकट दीजिए' का प्रयोग ही भारतीय संस्कृति के अनुकूल है।

भाषा में शब्दों का विशेष महत्व होता है क्योंकि भाषा शब्दों से ही बनती है। जब हम भाषा की शुद्धता की बात करते हैं, यह चर्चा तब तक अधूरी है जब तक शब्दों की समरूपता पर चर्चा न कर ली जाए। उदाहरण के तौर पर 'Compensation Of-

ficer' पदनाम के लिए उर्दू-मिश्रित पदनाम 'मुआवजा अधिकारी' प्रयुक्त करना। प्रशासनिक कार्यकलापों में शब्दों की समरूपता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अगर संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है तो जहां तक हो, पूरी तरह वही प्रयुक्त होनी चाहिए। यही स्थिति बोलचाल की शब्दावली के संदर्भ में लागू होती है। दोनों के मिश्रण से बचने की कोशिश की जानी चाहिए। इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। प्रशासनिक संदर्भ में 'Advance' के लिए 'पेशगी राशि' या 'अग्रिम रकम' का प्रयोग। 'पेशगी' और 'रकम' उर्दू शब्द हैं जबकि 'अग्रिम' और 'राशि' हिंदी शब्द। इसलिए 'Advance' के लिए या तो 'पेशगी रकम' शब्द प्रयुक्त किया जाए या फिर 'अग्रिम राशि'। इसी का एक अन्य पक्ष पर्यायों की उपलब्धता से संबंधित है। उदाहरण के लिए 'Leave' के लिए कहीं 'छुट्टी' और कहीं 'अवकाश' शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। बेहतर यह है कि इनमें से किसी एक शब्द का प्रयोग किया जाए और उसका आद्योपांत निर्वाह किया जाए। वास्तविकता यह है कि भाषा में सुबोधता के साथ-साथ प्रभावकता का होना अत्यंत आवश्यक है। भाषा के ये दोनों गुण उसे शुद्धता से ही प्राप्त हो सकते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा में सरलता के साथ-साथ शुद्धता भी आवश्यक है, अन्यथा हम भावी संतति को ऐसी भाषा देकर जाएंगे जिसकी अपनी कोई अस्मिता नहीं होगी।

संवैधानिक प्रावधानों ने कार्यालयी साहित्य में द्विभाषिकता (अंग्रेजी-हिंदी) अनिवार्य बनाई है जिससे प्रशासनिक कार्यों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी 'अनूदित हिंदी' बनती जा रही है अर्थात अनुवाद की भाषा (अंग्रेजी) अनूदित भाषा (हिंदी) के शब्दों एवं वाक्य-रचना को प्रभावित कर रही है। अनूदित हिंदी में अतिरेक शब्दों का प्रयोग भी इसी प्रभाव को रेखांकित करता है। उदाहरणार्थ 'Please acknowledge the receipt of this letter.' का अनूदित औपचारिक रूप है—'कृपया इस पत्र की पावती भेजने का कष्ट कीजिएगा।' इस अनुवाद में शब्दों का अतिरेक है। यदि 'कृपया' शब्द कह दिया गया है तो 'कष्ट' शब्द लिखना अपेक्षित नहीं। इसी प्रकार 'कीजिएगा' कहकर भाषा को अत्यधिक औपचारिक बना दिया गया है। इसके स्थान पर 'कृपया पत्र की पावती भेजें' अथवा 'कृपया पत्र-प्राप्ति की सूचना दें/भेजें' लिखकर शब्दों के अतिरेक से बचा जा सकता है। इससे भाषा सधा रूप लेती है। कार्यालयी हिंदी को अनूदित हिंदी न बनाएं तो हिंदी की प्रकृति को बचा सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि किसी भाषा को जब कार्यालयी साहित्य में व्यवहार में लाया जाए तो वह ऐसी होनी चाहिए जो सरल-स्पष्ट एवं बोधगम्य हो। उसमें लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति वाली भाषा का कोई स्थान नहीं। इसमें औपचारिकता एवं शिष्टता का अपना वैशिष्ट्य जरूर है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हिंदी को क्लिष्ट और बोझिल बना दिया जाए। इससे भाषा बनावटी रूप लेती है जो देखने-पढ़ने में अटपटा लगता है। कार्यालयी हिंदी को 'अनूदित हिंदी' न बनने देकर उसके मूल स्वरूप को बचाया जा सकता है। शब्दों के अतिरेक प्रयोग से बचना, शब्द-समरूपता की ओर ध्यान देना, अंग्रेजी सहित अन्यान्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को व्यवहार में लाकर हिंदी को प्रयोजनशील बनाना, आदि पक्ष ऐसे हैं जिन्हें नजरअंदाज करके कार्यालयी हिंदी को सरल-सहज स्वरूप नहीं दिया जा सकता। व्याकरण-हिंदी के वैशिष्ट्य को खोकर प्राप्त होने वाली सरल-हिंदी वस्तुतः उसकी अस्मिता पर प्रश्नचिह्न है। इसलिए सरलता-सहजता-बोधगम्यता के साथ-साथ भाषा की शुद्धता बनाए रखना भी आवश्यक है। ❑

(लेखक मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के हिंदी विभाग से संबद्ध हैं।)

सच्ची शिक्षा वही होती है जो आध्यात्मिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक—तीनों शक्तियों का एक साथ विकास करे। स्कूल से निकलने वाले युवक की—'अब मैं क्या करूं?'—ऐसी स्थिति नहीं आनी चाहिए।

शिक्षा से मेरा मतलब है—बच्चे या मनुष्य की तमाम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का सर्वतोन्मुखी विकास।

शिक्षा का न तो प्रारंभ है न अंत....

इसलिए बच्चे की शिक्षा का प्रारंभ मैं किसी दस्तकारी की तालीम से ही करूंगा और उसी क्षण से उसे कुछ निर्माण करना सिखा दूंगा।

—महात्मा गांधी

आदिवासी बोलियों के संरक्षण के प्रयास

○ जुएल ओराम

जनजाति कार्य मंत्रालय भारत सरकार विभिन्न राज्यों में स्थित 14 आदिवासी अनुसंधान संस्थानों के माध्यम से आदिवासी बोलियों को संरक्षित करने का महती प्रयास कर रहा है। हमारे देश में लगभग 3000 से अधिक आदिवासी बोलियां बोली जाती हैं और इन सभी को संरक्षित करना भारी-भरकम कार्य है परंतु आदिवासी अनुसंधान संस्थान (टीआरआई) ऐसे सीमित संसाधनों के माध्यम से आदिवासी अनुसंधान कार्य करके इन भाषाओं और शब्दावलियों को संरक्षित कर रहे हैं। राजस्थान में मानिक लाल वर्मा ने आदिमजाति शोध संस्थान द्वारा आदिवासियों एवं उनकी भाषाओं एवं संस्कृति पर 50,000 से अधिक पुस्तकें संग्रहित की गई हैं। इस पुस्तकालय में अभिलेखों के अतिरिक्त देश की विभिन्न जनजातियों के बारे में भी सूचना उपलब्ध हैं। इस पुस्तकालय को कंप्यूटरीकृत करने के प्रयास चल रहे हैं। इस प्रकार केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश, असम, तमिलनाडु आदि राज्यों में भी जनजातियों की मौखिक परंपराओं को अभिलेखों के माध्यम से संरक्षित किया जा रहा है। इस दिशा में शब्दकोश, संदर्भग्रंथ, व्याकरण पुस्तकें एवं बोलचाल के लिए निर्देशिकाएं प्रकाशित की गई हैं परंतु इस दिशा में अनुसंधान के माध्यम से प्रयास करने आवश्यक हैं।

महाराष्ट्र आदिवासी अनुसंधान संस्थान केंद्र द्वारा फील्ड में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए बोलचाल की निर्देशिका तैयार की गई है जो बहुत लाभप्रद पाई गई है। इस अनुसंधान द्वारा गोंडी, कोलामी एवं माडिया बोलियों पर शब्दकोश तैयार किए गए हैं। जो भी बोली 25,000 से अधिक आदिवासियों द्वारा बोली जाती है, उस पर शब्दकोश बनाने का कार्य हो रहा है। महाराष्ट्र टी.आर.आई. में आदिवासी बोलियों के जानने वाले सुयोग्य व्यक्तियों की कमी के कारण संस्थान द्वारा ऐसे कार्यों को पूरा करने में कठिनाइयों का सामना किया जा रहा है फिर भी सेवानिवृत्त व्यक्तियों के सहयोग से इस दिशा में कार्य हो रहा है। असम टी.आर.आई. द्वारा बोडो, कारबी, मिसिंग, राभा, लालुन्द, दियोरी आदि जनजाति बोलियों एवं संस्कृति के 'वीडियो कैसेट्स' बनाए गए हैं जो असमी एवं अंग्रेजी भाषा में तैयार किए गए हैं। असम में मुख्यत: बोड़ो, कारबी एवं मीसिंग — तीन जनजातीय भाषाएं हैं तथा राभा, लालंग, दीमागा, कछारी, दियोरी, हाजूग, गिरू, चकमा, काशी एवं कोकि मुख्य आदिवासी बोलियां हैं। तमिलनाडु में ऊंटी स्थित टी.आर.आई. द्वारा निम्नलिखित आदिवासी बोलियों एवं भाषाओं पर महत्वपूर्ण पुस्तकें तैयार की गई हैं:—

1. 'कम्युनिकेशन लेंग्वेज एंड डेवलपमेंट अमंग कनिकरण ट्राइब ऑफ कन्याकुमारी डिस्ट्रिक्ट' लेखक : डा. चिदंबरनाथ पिल्लै।
2. 'एजुकेशन एंड यूज ऑफ डायलॉग्स फॉर ट्राइबल डेवलपमेंट-अ केस स्टडी ऑफ दी टोडा ऑफ नीलगिरि डिस्ट्रिक्ट' लेखिका : श्रीमती पी. जयमिस्सी।

इसके अतिरिक्त टी.आर.आई., तमिलनाडु द्वारा आदिवासी साहित्य को संरक्षित करने कि दिशा में सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन

हमारे देश में लगभग 3000 से अधिक आदिवासी बोलियां बोली जाती हैं। इन सभी को संरक्षित करना भारी-भरकम कार्य है परंतु आदिवासी अनुसंधान संस्थान (टीआरआई) सीमित संसाधनों के माध्यम से आदिवासी अनुसंधान कार्य करके इन भाषाओं और शब्दावलियों को संरक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं।

लेंग्वेज, मैसूर; और इंटरनेशनल स्कूल ऑफ द्रविडियन लिंगुस्टिक्स, तिरूवनंतपुरम से संपर्क किया जा रहा है जिसमें वरिष्ठ भाषा-शास्त्रियों का सहयोग लिया जाएगा।

पश्चिम बंगाल राज्य में संथाल प्रमुख जनजाति समुदाय है जिसकी संख्या राज्य की संख्या के अनुपात में 52.40 प्रतिशत है। अत: राज्य द्वारा संथाली भाषा के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के लिए अनेक कार्य किए जा रहे हैं। पश्चिम बंगाल संस्थान अलचिकी लिपि के माध्यम से माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में संथाली भाषा पढ़ाने पर काफी समय से विचार कर रहा है। इस संदर्भ में संथाली भाषा [समिति] का गठन किया गया है जिसका लक्ष्य है: (1) प्राथमिक विद्यालय स्तर से महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर संथाली भाषा पढ़ाने पर विचार; (2) संथाली भाषा को अलचिकी लिपि के माध्यम से शिक्षण का माध्यम एवं एक विषय के रूप में संथाली भाषा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में पढ़ाने पर विचार; (3) संथाली भाषा को विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान देने पर विचार।

पश्चिम बंगाल राज्य में वर्तमान में 38 जनजातीय समुदाय हैं जिन्हें दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है: (1) आदिवासी, जो मैदानी क्षेत्रों में रहते हैं, और (2) आदिवासी, जो पर्वतीय क्षेत्रों में रहते हैं तथा जिनकी अपनी बोलियां हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में रह रहे जनजाति समुदाय लिपचा और भुटिया की भाषाएं जो तिब्बत हिमालय वर्ग से संबंध रखती हैं तथा मैद, गारो एवं राभा जनजाति की भाषाएं असम, बर्मीज ग्रुप से संबंध रखती हैं। इसके अतिरिक्त चकमा एवं हजम जनजातियों की बोलियां बर्मा वर्ग के नजदीक हैं।

आंध्र प्रदेश टी.आर.आई. ने आंध्र प्रदेश विश्वविद्यालय के सहयोग से डा. एम. कृष्णामूर्ति द्वारा लिखित, रनजोईया तथा सबाका आदिवासी बोलियों पर पुस्तकें

एक आदिवासी महिला

लिखवाई हैं जो आदिवासी क्षेत्र की कक्षा 1 एवं 2 में पढ़ाई जा रही हैं। जिन विद्यालयों में आदिवासी बच्चे उपलब्ध हैं वहां कक्षा-3 तक आदिवासियों को मातृभाषा में शिक्षा दी जा रही है। यह सोचा गया है कि प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले इन आदिवासी बच्चों को कक्षा-3 से राजभाषा माध्यम से पढ़ाया जाए। आदिवासियों की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के संरक्षण में मुख्यत: निम्नलिखित कठिनाईयां सामने आती हैं:

1. जनगणना के समय आदिवासी भाषा एवं बोलियां बोलने वालों की संख्या नहीं लिखी जाती।
2. आदिवासी भाषाओं का वर्गीकरण नहीं हो पाया है।
3. राज्य सरकारों द्वारा भाषा-नीति के अंतर्गत छोटी-छोटी कक्षाओं के लिए आदिवासी बोलियों में लोकप्रिय साहित्य की रचना नहीं की गई है। अधिकांश मामलों में अधिकतर शिक्षक गैर-आदिवासी भाषाओं में अधिक रुचि नहीं रखते। उन्हें पृथक रूप से प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
4. आदिवासी बोलियों का अभिलेखन अत्यंत आवश्यक है परंतु इसे कंप्यूटरीकृत करने में अधिक धनराशि एवं बजट की आवश्यकता है जो उपलब्ध नहीं हो पाती।

आदिवासी भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के लिए अनुसंधान, प्रशिक्षण इत्यादि में भी धनराशि की आवश्यकता होती है।

राज्य सरकारों द्वारा ऐसी भाषा-नीति का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे शिक्षा आदिवासी बोलियों के माध्यम से दी जा सके। इस दिशा में राज्यों के टी.आर.आई. द्वारा भी अनुसंधान किए जाने चाहिए। ❑

(श्री जुएल ओराम केन्द्र सरकार में जनजातीय कार्य मंत्री हैं।)

आधुनिक मैक्रो इकानॉमिक्स के जनक

○ ए. रामलिंगम

टोबिन ऋणात्मक आयकर की नई अवधारणा की चर्चा करते हैं, जिसके तहत सरकार गरीबों से कर उगाहने की बजाय उन्हें पैसा देती है। प्रस्ताव यह है कि सरकार एक निर्धारित आमदनी से नीचे के सभी परिवारों को कमी के एक अंश का भुगतान करे। यह भुगतान आयकर-रिफंड की तरह व्यक्ति का अधिकार होगा। नई व्यवस्था से लोग अपना आत्मसम्मान और उत्साह बनाए रख सकेंगे, जो उन्हें इस दुष्चक्र को तोड़ने में मदद करेगा।

कीन्स के समर्थक तथा आधुनिक मैक्रो-इकानॉमिक्स के जनक, जेम्स टोबिन का 11 मार्च, 2001 को देहांत हो गया। टोबिन के विदा होने के साथ न केवल एक अध्याय, बल्कि एक युग का पटाक्षेप हो गया।

1981 में अर्थ-विज्ञान में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जेम्स टोबिन (1918-2002) को 20वीं सदी के मैक्रो-इकानॉमिक्स के 'स्तंभों और मेहराबों' का एक मुख्य निर्माता माना जाता है। येल विश्वविद्यालय के साथ एक अग्रणी मैक्रो इकानॉमिस्ट के रूप में अपने लंबे कैरियर के प्रति समर्पित टोबिन ने पोर्टफोलियो-प्रबंध सिद्धांत, उपभोग-प्रणाली सिद्धांत, मौद्रिक-अभिवृद्धि सिद्धांत, नियो-क्लासिकल नव-कीन्सवादी सिद्धांत, शुद्ध आर्थिक कल्याण की माप, ऋणात्मक आयकर कार्यक्रम, निवेश मूल्य, टोबिन्स क्यू सिद्धांत, वित्तीय मध्यस्थता और मुद्रा एवं बैंकों की नई अवधारणा के बारे में अग्रणी एवं स्थायी योगदान किया। टोबिन ने अंतर्राष्ट्रीय वित्त बाजारों को समझने, सांख्यिकीय विधियों और परिवारों तथा व्यापारों के खर्च के फैसले के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने अर्थव्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप के कीन्स सिद्धांत का समर्थन किया।

अमेरिका में न्यू हैवन, कनैक्टिकट के येल विश्वविद्यालय में 'स्टर्लिंग प्रोफेसर ऑफ इकानॉमिक्स एमेरिटस' जेम्स टोबिन को नोबेल पुरस्कार, प्रशस्ति-पत्र के अनुसार 'वित्त बाजारों और खर्च करने और मूल्यों के उतार-चढ़ाव के साथ उनके संबंधों के उनके विश्लेषण' के लिए दिया गया था। टोबिन कीन्स के समर्थक हैं। वे नव अभिजात्यवादी (नियो-क्लासिकल) भी हैं। उन्होंने आर्थिक सिद्धांत के अग्रणी क्षेत्र में और वास्तविक आर्थिक नीति पर काम किया है। 1960 में जब राष्ट्रपति जॉन एफ. केनेडी ने वाल्टर हेलर की अध्यक्षता में कीन्सवादी आर्थिक सलाहकार परिषद नियुक्त की, तो 1961-62 में जेम्स टोबिन उसके सदस्य बने। केनेडी की उस प्रथम परिषद में स्थायी सलाहकार और आर्थिक नीति के टिप्पणीकार के रूप में टोबिन ने राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नव-कीन्सवादी मैक्रो इकानॉमिक्स और नव-अभिजात्यवादी माइक्रो-इकानॉमिक्स के बीच तालमेल के प्रयासों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। नव-अभिजात्यवादी अर्थशास्त्र में अपनी माइक्रो-इकानॉमिक्स के टक्कर की सुविकसित मैक्रो-इकानॉमिक्स का अभाव था।

पुरस्कार घोषित करते हुए नोबेल समिति ने घोषणा की कि उनके काम ने '1970 के दशक के दौरान मौद्रिक नीति के प्रभाव, सरकारी बजट घाटे के परिणाम और आमतौर से स्थिरीकरण नीति के बारे में निस्संदेह एक अच्छे-खासे शोध को बढ़ावा दिया था।' यह पुरस्कार व्यवसाय में उच्चतम मान्यता के रूप में देखा गया, क्योंकि मुद्रावादियों तथा अन्य रूढ़िवादियों के उत्कर्ष और 1970 के उत्तरार्द्ध में रीगन के राष्ट्रपति बनने के बाद व्यवसाय की अंधकारतम घड़ी में यह पुरस्कार कीन्सवाद के एक असंभाव्य समर्थक को, एक हस्तक्षेपवादी, पुनर्विभाजक और समतावादी अर्थशास्त्र को दिया गया

था। टोबिन के अपने नोबेल पुरस्कार को कीन्सवाद के सिद्धांत के प्रति विश्वास मत के रूप में लिया। टोबिन के कीन्सवाद किस्म के मैक्रो-इकानॉमिक्स मॉडल अधिक उदार बन गए हैं। नोबेल पुरस्कार 'वित्त-बाजारों के पोर्टफोलियो मॉडलों तथा व्यय संबंधी फैसलों, रोजगार, उत्पादन और कीमतों के उनके संबंधों' जैसे अर्थव्यवस्था के विशिष्ट पहलुओं या क्षेत्रों से संबंधित सैद्धांतिक योगदानों को पुरस्कृत करने का एक उदाहरण है।

जेम्स टोबिन का जन्म 5 मार्च, 1918 को शैम्पेन, इलिनोइस में हुआ था। उनके पिता, लुई एम. टोबिन एक पत्रकार थे और उनकी माता मार्गरेट एगरटन टोबिन एक सामाजिक कार्यकर्त्री थीं। 1930 के दशक में हार्वर्ड में उनका शिक्षा काल शानदार रहा। जोसेफ ए शूम्पीटर, एडवर्ड चैम्बरलिन, वासिली लियोनटीफ, सेमूर हैरिस, एल्विन हैंसन, एड मेसन तथा विद्वत संकाय के अन्य सदस्यों ने उन्हें अर्थशास्त्र पढ़ाया। उनके मार्गदर्शक, शूम्पीटर, उनके शिक्षक और उनके पी.एचडी. शोध-प्रबंध के सलाहकार थे। स्नातक छात्र के रूप में पॉल सैमुएलसन, लॉयड मेत्जलर, रिचर्ड गुडविन, पॉल स्वीजी और बॉब सोलो जैसे महारथी हार्वर्ड में टोबिन के साथी थे। उन्होंने 1939 में हार्वर्ड से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की और 1942-46 के दौरान अमेरिकी नौसेना में सेवा के लिए अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा बीच में ही रोक दी। 1947 में उन्होंने हार्वर्ड से पी.एचडी. की। 1950 में येल के अर्थशास्त्र विभाग में आ गए, जहां 1957 में वे स्टर्लिंग प्रोफेसर बन गए तथा 1955-61 और 1964-65 के दौरान उन्होंने दो बार काउल्स अर्थशास्त्र अनुसंधान संस्थान के निदेशक के रूप में कार्य किया।

नवजागरण

मैक्रो-इकानॉमिक्स के टोबिन जैसे मॉडलों ने वास्तविक कीन्सवाद के नवजागरण को जन्म दिया, जिसने आर्थिक मॉडलों की एक बड़ी विविधता उत्पन्न हुई। टोबिन का पांडित्यपूर्ण योगदान काफी अधिक तथा अपनी पहुंच और अनुभूति की दृष्टि से इतना व्यापक है कि उसे सही मायनों में संक्षिप्त करना असंभव ही है। वैसे, वे मैक्रो-इकानॉमिक्स और मौद्रिक सिद्धांतों में अपनी शोध के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। 1981 में उन्हें नोबेल पुरस्कार पोर्टफोलियो चयन सिद्धांत (जिसमें उन्होंने आधुनिक वित्त सिद्धांत के लिए आधार तैयार किया था।) और सामान्य मौद्रिक ढांचे अर्थात वास्तविक

मैक्रो-इकानॉमिक्स के टोबिन जैसे मॉडलों ने वास्तविक कीन्सवाद के नवजागरण को जन्म दिया, जिसने आर्थिक मॉडलों की एक बड़ी विविधता उत्पन्न हुई। टोबिन का पांडित्यपूर्ण योगदान काफी अधिक तथा अपनी पहुंच और अनुभूति की दृष्टि से इतना व्यापक है कि उसे सही मायनों में संक्षिप्त करना असंभव ही है।

और वित्त बाजारों के उनके विश्लेषण के लिए दिया गया था। इस विश्लेषण में उन्होंने सामान्य संतुलन सिद्धांत का अनूठा उपयोग किया था। डॉन पैटिनकिन ने इस अवधारणा को नई दिशा दी। उन्होंने अपने मॉडलों में शेयर बाजारों का समावेश किया। एम. मूसा ने भी अपने मॉडलों में शेयर बाजारों को समावेश किया। उपभोग और निवेश संबंधी व्यवहार के निर्धारकों या आर्थिक अभिवृद्धि और उतार-चढ़ाव के सामूहिक मॉडलों में निहित वास्तविक वित्तीय अंतरण व्यवस्थाओं के उनके विश्लेषण तथा स्थिरीकरण-सिद्धांत और नीति के वर्तमान विवाद में उनके योगदान सिद्धांतवादियों और नीति-निर्माताओं के लिए तत्काल आवश्यक महत्व के हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने नई सांख्यिकीय और अर्थवित्तीय तकनीक विकसित की तथा गरीबी और बेरोजगारी पर सामाजिक-नीति की चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान किया।

कीन्सवादी अर्थशास्त्री के रूप में टोबिन वित्तीय विश्लेषण के लिए एक सामान्य संतुलन-पोर्टफोलियो दृष्टिकोण विकसित करने में अग्रणी रहे हैं, जिसमें व्यापक मौद्रिक अंतरण व्यवस्था का सहारा लिया गया है। परिसम्पत्ति विकल्प संबंधी टोबिन का मॉडल दर्शाता है कि सम्पत्तियों के स्वामी परिसम्पत्तियों का विविधतापूर्ण पोर्टफोलियो रखेंगे और इन सम्पत्तियों में धन शामिल होगा। सब कुछ एक ही दांव पर न लगाने के सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार अलग-अलग तरह की परिसम्पत्तियां रखने से पोर्टफोलियो का समग्र जोखिम कम हो जाता है। अकेली परिसम्पत्ति अधिक जोखिमपूर्ण मानी जाती है और इससे अपेक्षित आमदनी से वास्तविक आमदनी भिन्न होने की संभावना काफी अधिक रहती है। हैरी एम. मार्कोवित्ज (1959) और विलियम शार्प (1970) ने भी आधुनिक पोर्टफोलियो सिद्धांत प्रतिपादित किया। विविधीकरण का सिद्धांत मार्कोवित्ज के काम पर आधारित था।

परिसम्पत्ति धारणा के टोबिन के सरलीकृत स्वरूप में केवल दो ही परिसम्पत्तियां हैं: धन, जो शून्य के निश्चित प्रतिफल के कारण कम जोखिमपूर्ण होता है; और निरंतर बांड, जो जोखिमपूर्ण होते हैं। टोबिन के विश्लेषण को जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियों की एक बड़ी संख्या के चयन पर लागू किया जा सकता है। प्रत्येक निवेशकर्ता को जोखिम-विमुख माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि परिसम्पत्तियों के एक पोर्टफोलियो से अपेक्षित प्रतिफल सकारात्मक उपयोगिता उत्पन्न करता है, लेकिन जोखिम से ऋणात्मक उपयोगिता

प्राप्त होती है। कोई भी व्यक्ति परिसम्पत्ति-पोर्टफोलियो तैयार कर सकता है, जिसमें जोखिमविहीन परिसम्पत्ति मुद्रा और जोखिमपूर्ण परिसम्पत्ति बांडों को रखा जा सकता है। सम्पत्ति में बांडों का जितना अधिक अनुपात होगा, उतनी ही अधिक पोर्टफोलियो से अपेक्षित आमदनी होगी, परंतु इसकी जोखिम-प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होगी। व्यक्ति मुद्रा और बांडों के एक ऐसे मिश्रण का चयन करता है जो प्रतिफल और जोखिम के बारे में उसकी प्राथमिकताओं को देखते हुए उसकी उपयोगिता को अधिकतम करता हो। इस तरह टोबिन ने मुद्रा के लिए परिसम्पत्ति मांग के विश्लेषण पर 'पोर्टफोलियो सिद्धांत' के नाम से प्रसिद्ध हो चुके सिद्धांत को लागू किया।

पोर्टफोलियो-संतुलित मॉडल से मुद्रा के लिए काल्पनिक मांग के सिद्धांत के रूप में एक अधिक संतोषजनक सिद्धांत प्राप्त होता है। मॉडल में मुद्रा के लिए किसी सौदा-मांग का हवाला नहीं दिया गया है।

डब्ल्यू.जे. बाउमोल (1952) और जे. टोबिन (1956) ने सौदा-मांग के लिए अलग से 'मुद्रा की माल-सूची' दृष्टिकोण विकसित किया। इस माल-सूची के सैद्धांतिक दृष्टिकोण में फार्मों में रखी गई मुद्रा कार्य-पूंजी के सदृश होती है। माल-सूची मॉडल से पता चलता है कि फर्मो की मुद्रा-अधिशेषों की मांग ब्याज की दर और आमदनी से प्रति-लोग रूप से सम्बद्ध होती है। मुद्रा की 'सौदा-मांग' को बांड से 'मुद्रा' सौदों की संख्या में परिवर्तन के जरिए होने वाले ब्याज-दर परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया करना जरूरी है। राजस्व मामले में ब्याज-दर में वृद्धि सौदों की एक संख्या विशेष के लिए सीमांत-राजस्व में वृद्धि करेगी। लागत के मामले में प्रत्येक सौदे की एक लागत होती है जो दलाल की फीस होती है या व्यापार में खर्च समय की निश्चित लागत होती है। प्रत्येक परिसम्पत्ति-सौदे की एक निर्धारित लागत होती है, जो सीमांत-लागत के बराबर होती है। सीमांत-राजस्व के साथ मिलकर सीमांत लागत से लाभ प्राप्त होता है, जो सौदों की संख्या के अधिकतम (इष्टतम) होने से मिलता है। सौदा-मांग की ब्याज-लोच को इस मॉडल में स्पष्ट किया गया है। एक समझदार परिवार या फर्म ऐसा औसत मुद्रा अधिशेष रखेगी जो सीमांत-परिसम्पत्ति-सौदों की लागत को सीमांत-बांडधारिता से प्राप्त ब्याज के समकक्ष रखेगा।

जे.जी. गुर्ले और ई.एस. शॉ द्वारा निर्देशित तथा बाद में जेम्स टोबिन, एल.ई. ग्रामले और सैमुएल बी. चेज जूनियर द्वारा स्वीकृत तथा विकसित 'नवधारणा' के प्रमुख सिद्धांत के अनुसार वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय बिचौलियों के बीच के अंतर को बारीकी से स्पष्ट किया गया है तथा जो अंतर मौजूद ही नहीं हैं, उनका बैंक देयताओं के मौद्रिक स्वरूप से भीतरी तौर पर बहुत ही कम लेना-देना है (टोबिन)। 'नव-धारणा' के सुझाए गए संशोधन में मुद्रा तथा मौद्रिक प्रणाली की अवधारणा के स्थान पर 'मध्यस्थता' की अवधारणा को रखा गया है। इसके समर्थन में बताया जाता है कि विनिमय-माध्यम के तौर पर अपनी बाध्यताओं का इस्तेमाल इसके कई आयामों में से केवल एक है, और उसमें वित्तीय संस्थानों के विचार एक-दूसरे से भिन्न हैं।

निहितार्थ

पुरानी धारणा और 'नवधारणा' के निहितार्थों को संक्षेप में निम्नानुसार बताया जा सकता है :

पुरानी धारणा : परंपरागत धारणा के अनुसार एक समूह के रूप में वाणिज्यिक बैंक अपनी देयताओं को अपने रिजर्व के एक गुणक के तौर पर एक ऐसी सीमा तक बढ़ा सकता है, जिसका दूसरे वित्तीय बिचौलियों द्वारा अनुमान दूर-दूर तक नहीं लगाया जा सकता। इसका एक मोटा कारण यह तथ्य है कि बैंकों की मांग जमाएं विनिमय के प्रधान माध्यम के तौर पर काम आती हैं। वाणिज्यिक बैंकों का अनूठापन, भुगतान के माध्यम उत्पन्न करने की उनकी योग्यता होता है। टोबिन ने वाणिज्यिक बैंक-प्रणाली की रिजर्व को गैर-बैंकिंग बिचौलियों की तुलना में एक अधिक डिग्री तक बनाए रखने को 'विडोज़ क्रूज' (दिखने में कम, परंतु असीम आपूर्ति) के समान बताया है।

वाणिज्यिक बैंकों की दो विशेषताएं हैं जो उन्हें अन्य वित्तीय मध्यस्थों से एकदम अलग करती हैं। ये हैं (1) मुद्रा के रूप में सार्वजनिक परिचलन में सिक्के और मुद्रा के साथ-साथ भुगतान के व्यापक तौर पर स्वीकार्य माध्यमों के रूप में काम आने वाली बैंकों की देयताएं कम से कम उनकी मांग-जमा देयताएं और (2) जनता की वरीयता जो सामान्यतः जमाओं की कुल मात्रा या मुद्रा की कुल मात्रा को तय करने में कोई भूमिका अदा नहीं करती।

बैंकों के अलावा अन्य वित्तीय मध्यस्थ मुद्रा नहीं बनाते और न ही वे उम्मीद कर सकते हैं कि उधार देने के अपने काम के विस्तार के अनुरूप वे जमा प्राप्त कर पाएंगे। दूसरे शब्दों में वाणिज्यिक बैंक, और केवल वाणिज्यिक बैंक ही बैंक-उधार और बैंक-जमाओं की बहुविध रचना—'विडोज़ क्रूज' के अधिकारी होते हैं और चूंकि उनके पास असीमित विस्तार की यह कुंजी होती है, इसलिए उन पर रिजर्व की जरूरतों के जरिए अंकुश लगाना होता है।

'नव' धारणा : 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक के आरंभ में मुद्रा-पूर्ति सिद्धांत पर दो भिन्न हल्कों में काफी काम हुआ। इनमें से एक में थे कागन, फ्राइडमैन और श्वार्त्ज, ब्रूनर और मेल्तजर तथा सेंट लुई का फेडरल रिजर्व बैंक; दूसरे में थे रैडक्लिफ और सेयर्स, गुर्ले एवं शॉ, रूसा एवं टोबिन। मुद्रा के बारे में परंपरागत दृष्टिकोण के विपरीत नए दृष्टिकोण का विकास काफी हद तक जेम्स टोबिन द्वारा किया गया। टोबिन ने इस समूह को 'नवधारणा' का नाम दिया।

कथित 'नवधारणा' के समर्थकों का कहना है कि वाणिज्यिक बैंक अद्वितीय नहीं हैं, बल्कि वे सम्पत्ति-स्वामियों के पोर्टफोलियो में ऐसे वर्गीकृत उत्पादों का एक ही बिंब तैयार करते हैं जो एक-दूसरे के स्थानापन्न होते हैं। 'नवधारणा' में इस बात पर जोर दिया जाता है कि अन्य सभी बैंक इतर वित्तीय मध्यस्थों की तरह वाणिज्यिक बैंक भी वर्गीकृत उत्पाद के महज प्रदाता होते हैं। लाभों को अधिकतम करने जैसी अन्य मध्यस्थों के आकार को सीमित करने वाली बातों को 'नवधारणा' में वाणिज्यिक बैंकों को उसी तरह माना गया है जैसे कि परंपरागत सूक्ष्म सिद्धांत में किसी कम्पनी को माना जाता है।

आधुनिक बैंकिंग संस्थागत ढांचे में वैधानिक रिजर्व लाभों को उच्चतम बिंदु तक ले जाना आवश्यकताओं द्वारा लगाई गई रोक पर निर्भर करता है।

'नवधारणा' का मकसद यह नहीं है कि बैंकों तथा प्रतियोगी मध्यस्थों की नियामक व्यवस्था में मौजूद अंतरों को एक को रोक में ढील देकर या दूसरे पर नियंत्रण कस-कर कम किया जाए।

मुद्रा-अभिवृद्धि-नीति किसी बढ़ती अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका से संबंधित होती है। टोबिन ने सबसे पहले 1965 में नव-अभिजात्य मुद्रा-वृद्धि मॉडल प्रस्तुत किया और राबर्ट सोलो तथा टी वी स्वैन के अग्रणी काम से विकास संभव हो पाया। आर्थिक अभिवृद्धि के अधिकांश मॉडल गैर-मौद्रिक हैं। गैर-मौद्रिक नव-अभिजात्य अभिवृद्धि मॉडलों में दूसरे प्रकार के पोर्टफोलियो-विकल्पों के लिए कोई जगह नहीं है। वे स्वीकार करते हैं कि परिसम्पत्तियों की एक ही किस्म है जो सम्पत्ति-स्वामियों को पुनरूत्पादनीय पूंजी के रूप में मूल्य को भंडारित करने का काम कर सकती है।

1955 में टोबिन ने लायड मेत्जलर के 'सम्पत्ति प्रभाव' को 'पोर्टफोलियो-संतुलन के सिद्धांत' का रूप प्रदान किया। इसमें ब्याज दर को पुरानी मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक सम्पत्ति के साथ-साथ मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक सम्पत्ति के मौजूदा भंडार को बनाए रखने की जनता की आकांक्षाओं के बराबर रखा गया है। परिणामस्वरूप मूल्य-स्थिरता और सामान्य तौर पर वृहद आर्थिक साम्य के लिए पोर्टफोलियो-संतुलन आवश्यक और पर्याप्त शर्त बन गया। टोबिन धन को सम्पत्ति-पोर्टफोलियो-धारकों के लिए वैकल्पिक सम्पत्ति या वास्तविक पूंजी का आंशिक विकल्प मानते हैं। धन के सरकारी कर्ज या 'बाहरी धन' होने की स्थिति में मौद्रिक अधिकारी इसकी अभिवृद्धि-दर नियंत्रित करके अर्थव्यवस्था की स्थिर-अवस्था-सम्पत्तियों को प्रभावित कर सकते हैं।

जेम्स टोबिन, डेविड लेवहारी और डॉन पाटिनकिन तथा अन्य लोगों द्वारा विकसित नव-अभिजात्य मौद्रिक अभिवृद्धि मॉडलों में पोर्टफोलियो-संतुलन को एक ऐसी व्यवस्था के तौर पर इस्तेमाल किया गया है जो दीर्घावधि में मुद्रा की गैर-तटस्थता को स्पष्ट कर सकती है। 'मुद्रा और आर्थिक अभिवृद्धि' पर टोबिन के शोध-पत्र का उद्देश्य अर्थव्यवस्था की पूंजी-सघनता की मात्रा तय करना है। टोबिन का मौद्रिक-अभिवृद्धि सिद्धांत अभिवृद्धि दर पर मुद्रा के प्रभाव और वृद्धिशील अर्थव्यवस्था की स्थिर-अवस्था के बारे में है।

पोर्टफोलियो-संतुलन की अवधारणा और इसकी निहित मान्यता, कि धन और असली पूंजी परिसम्पत्तियों के रूप में स्थानापन्न होते हुए, क्रांतिकारी नव-अभिजात्य मौद्रिक अभिवृद्धि सिद्धांत का निचोड़, जिसकी ई शॉ (1973) और आर. मैककिनॉन (1973) ने हाल में आलोचना की है। कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं से संबंधित टिप्पणियों के आधार पर शॉ और मैककिनॉन का मानना है कि मौद्रिक परिसम्पत्तियों के भंडारों को बचाने की प्रवृत्ति और अभिवृद्धि-दरों के बीच किसी भी प्रकार के परस्पर-संबंधों के लिए मौद्रिक-अभिवृद्धि सिद्धांत की ऐसी पुनर्रचना जरूरी हो सकती है जो मुद्रा और वास्तविक धन को स्थानापन्न के बजाय पूरक के रूप में देखती हो।

'न्यू' अभियान

'न्यू' यानी 'नेट इकानॉमिक वैलफेयर' पर चर्चा विलियम नोर्डहॉस और जेम्स टोबिन की 'इज़ ग्रोथ आब्सोलीट' (नेशनल ब्यूरो आफ इकानॉमिक रिसर्च, कोलम्बिया विश्वविद्यालय प्रेस, न्यूयार्क 1972) से ली गई है। आर्थिक कल्याण के माप 'मेजर ऑफ इकानॉमिक वेलफेयर' (एम.ई.डब्ल्यू.) को रखा गया है। 'शुद्ध आर्थिक कल्याण कुल राष्ट्रीय उत्पादन का एक समायोजित माप होता है जिसमें उपभोक्ता और निवेश की ऐसी मदों को शामिल किया जाता है जो सीधे आर्थिक कल्याण में योगदान देती हैं।' (पाल ए सैमुएल्सन एवं विलियम डी नोर्डहास, इकानॉमिक्स, मैकग्रा-हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1989, पृ. 117)। विलियम नोर्डहॉस और जेम्स टोबिन ने ऐसे जीवन-स्तर के लक्ष्य के लिए अभिवृद्धि के खिलाफ एक नया अभियान चलाया जिसका लक्ष्य अधिकतम सकल राष्ट्रीय उत्पाद की बजाय व्यक्ति की अधिकतम स्वतंत्रता और खुशहाली था।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद और विकल राष्ट्रीय उत्पाद कल्याण के बजाय उत्पाद के माप हैं और वे ऐसी कई गतिविधियों की गणना करते हैं जो प्रत्यक्षत: उपयोगिता का स्रोत नहीं होती। सकल राष्ट्रीय उत्पाद की एक प्रत्यक्ष कमी यह है कि यह खपत का नहीं, बल्कि उत्पादन का सूचकांक है। 'आर्थिक गतिविधि का लक्ष्य कुछ भी हो, उपभोग होता है।' (नोर्डहॉस एवं टोबिन)। 'प्रतिव्यक्ति' अवधारणा ही कल्याण का उद्देश्य होती है, संपूर्ण उपभोग नहीं। 'आर्थिक पेशा अवधारणात्मक रूप से या सांख्यिकीय दृष्टि से आर्थिक प्रदर्शन का कोई ऐसा माप विकसित करने में बड़ा धीमा रहा है। जो

व्यापक रूप से परिभाषित और सावधानीपूर्वक आकलित उपभोग के प्रति उन्मुख हो।' (नोर्डहॉस एवं टोबिन)। कल्याण उपाय सुझाते हुए नोर्डहॉस और टोबिन किसी भी प्रकार से परंपरागत राष्ट्रीय आय-खातों या उत्पादन-मापों के महत्व को नहीं नकारते। उनका एम.ई.डब्ल्यू. (या एन.ई.डब्ल्यू.) मोटे तौर पर राष्ट्रीय आय-खातों की मदों की पुनर्व्यवस्था होता है।

उपभोग के प्राथमिक अवरोधक के रूप में आय की सम्पत्ति-व्याख्या जे.एम. कीन्स की 'जनरल थ्योरी' (1936) में प्रधानता लिए हुए है। खुद कीन्स ने भी 'सम्पत्ति के मौद्रिक मूल्य में अप्रत्याशित परिवर्तनों' के सम्मानित प्रभाव की ओर इशारा किया है। उन्होंने तो 'आमदनी के वर्तमान और भावी स्तरों के बीच संबंध की अपेक्षाओं में परिवर्तनों' को वर्गीकृत भी किया। स्थायी (एम. फ्राइडमैन, 1957) और जीवनकाल आमदनी (ए. एंडो एवं एफ. मोदीग्लियानी, 1963; एफ. मोदीग्लियानी एवं आर. ब्रमबर्ग, 1954) पर हाल में दिए गए जोर से सम्पत्ति की व्याख्या को प्रमुखता मिली है।

जी. एक्ले (1951) तथा आरंभिक लेखकों ने उपभोग-क्रिया में सम्पत्ति की भूमिका के महत्व पर जोर दिया। उनका विचार था कि अगली पीढ़ी को सम्पत्ति के अन्य हस्तांतरण की वसीयतों के विपणन की इच्छा तथा बचतकर्ता के जीवनकाल में उपभोग को बराबर करने से जरूरत के बचत को प्रेरित किया जा सकता है। तब वसीयत के लक्ष्य को पूरा करने के लिए सम्पत्ति की पर्याप्तता मौजूदा बचत और उपभोग के लिए एक अवरोधक सिद्ध होगी।

कीन्स के 'सामान्य सिद्धांत' के संपूर्ण ढांचे पर सामान्य सैद्धांतिक हमले के दौरान ए.सी. पिगोऊ (1947) ने सम्पत्ति प्रभाव पर जोर दिया। पिगोऊ ने बताया कि मूल्य-अपस्फीति द्वारा निजी सम्पत्ति के असली मूल्य को अनिश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है। कारण यह है कि अपस्फीति से पैसे की क्रयशक्ति बढ़ जाएगी। जैसे-जैसे परिसम्पत्तियों के मालिक असली सम्पत्ति से संतृप्त होते जाते हैं, उपभोग की उनकी प्रवृत्ति निश्चित रूप से बढ़ती जाती है। 'पिगोऊ प्रभाव' के नाम से प्रचलित होने वाला पूर्ण-मूल्य स्तर निजी सम्पत्ति के असली मूल्य पर अपने प्रभाव के कारण उपभोग की प्रवृत्ति पर प्रभाव डालना है।

'वैल्थ मॉडल ऑफ कंजम्शन' में वाल्टर डोल्डे और जेम्स टोबिन (1971) ने दर्शाया कि मानव और मानवेतर सभी सम्पत्ति, श्रम का भावी प्रतिफल तथा बांडों एवं स्टाकों के भावी प्रतिफल अभी या कभी भविष्य में अपने पूंजीकृत मूल्य पर उपभोग के लिए उपलब्ध होते हैं। अवधियों के बीच सम्पत्ति सदैव ही प्रतिभोग्य होती है। बजट सर्वेक्षणों में अलग-अलग परिवारों के स्तर पर पुरानी बचत नि:संदेह निचले कोष्ठकों के लिए दर्ज न की गई बचत का समर्थन करती है। जैसा कि टोबिन ने बताया (1951) की एक विशेष वास्तविक आय पर परिवारों को उपलब्ध सम्पत्ति के अंतरों से विभिन्न सर्वेक्षणों में बचत करने या न करने की उनकी प्रवृत्तियों में किए गए अंतरों को समझाने में मदद मिलती है। यह स्पष्टीकरण उससे मेल खाता है जिसके द्वारा ड्यूसेनबेरी, फ्राइडमैन और मोदीग्लियानी ने इस बात को स्पष्ट किया है।

शिकागो के मिल्टन फ्रायडमैन और येल के जेम्स टोबिन जैसे उदारवादी इस बात से सहमत हैं कि गरीबों के लिए कल्याण प्रणाली के आय-आधारित कार्यक्रमों के असम्बद्ध सेट को 'नकारात्मक आयकर' नामक नकद सहायता के एक एकीकृत कार्यक्रम से बदलना सस्ता भी होगा और अधिक मानवीय भी।

'q' अनुपात

सैद्धांतिक रूप से निवेश एक जटिल विषय है। एक अग्रणी प्रयास में टोबिन और ब्रेनार्ड (1977) ने निवेश के प्रति एक वित्तीय दृष्टिकोण तैयार किया। टोबिन ने निवेश-मांग को वित्तीय परिवर्तियों से जोड़ने का एक तरीका निकाला जो अनुभवजन्य उपचार के अधीन है। निवेश को 'q' अनुपात पर सकारात्मक रूप से निर्भर करने के लिए परिकल्पित कर दिया जाता है। यहां 'q' p/a के बराबर है। मूल्य-निर्धारण अनुपात = निवेश पर प्रतिफल की दर/पूंजी की लागत। जितना बड़ा 'q' होगा, कम्पनी के निवेश का उतना ही अधिक होने की उम्मीद है।

टोबिन का तर्क है कि कम्पनी को विस्तार करना चाहिए या संकुचन, इस बात का अनुमान कम्पनी की परिसम्पत्तियों की मौजूदा लागत के अनुपात में इसके स्टाक के बाजार-मूल्य से लगाया जा सकता है। इससे टोबिन निष्कर्ष निकालते हैं कि अगर उसका 'q' एक (q>1) से बड़ा हो, तो कम्पनी को विस्तार करना चाहिए (नए संयंत्र और उपकरणों में निवेश द्वारा)। जे.एम. कीन्स ने अपनी 'जनरल थ्योरी' (1936) में निवेश और लागत के संदर्भ में बाजार-मूल्य के इस संबंध को बताया है। टोबिन ने तर्क दिया है कि 'q' ही वह चैनल है जिसके माध्यम से वित्तीय बाजार की घटनाएं वास्तविक आर्थिक गतिविधि को प्रभावित करती हैं। प्रतिस्थापन-लागत के संदर्भ में बाजार-मूल्य को बढ़ाने वाली घटनाएं वास्तविक निवेश को बढ़ावा देती हैं। 'q' का प्रेक्षित मूल्य निवेश को मापने का पैमाना भी है और निवेश गतिविधि का पूर्वानुमान लगाने वाला बैरोमीटर भी है। कई मैक्रो-इकानॉमिक मॉडलों में निवेश को समझाने

और अर्थव्यवस्था के भावी मार्ग की भविष्यवाणी करने के लिए स्टाक के मूल्यों का इस्तेमाल किया जाता है, नीति निर्माता और मैक्रो-इकानॉमिक मॉडल बनाने वाले अर्थव्यवस्था का समग्र रास्तों पर निगाह रखने के लिए सम्पूर्ण 'q' आंकड़े का उपयोग करते हैं। एक सम्पूर्ण 'q' सूचकांक संपूर्ण आय के प्रोत्साहनों को मोटे तौर पर मापने के लिए एक आधार प्रस्तुत करता है। निवेश मांग के सिद्धांत को तैयार करने में टोबिन का 'q' काफी मददगार होता है। जब पूंजी-स्टाक इष्टतम पर पहुंच जाता है, तब सीमांत निवेश का बाजार-मूल्य अपनी प्रतिस्थापन-लागत के बराबर हो जाता है।

शिकागो के मिल्टन फ्रायडमैन और येल के जेम्स टोबिन जैसे उदारवादी इस बात से सहमत हैं कि गरीबों के लिए कल्याण प्रणाली के आय-आधारित कार्यक्रमों के असम्बद्ध सेट को 'नकारात्मक आयकर' नामक नकद सहायता के एक एकीकृत कार्यक्रम से बदलना सस्ता भी होगा और अधिक मानवीय भी। येल के जेम्स टोबिन 'नकारात्मक आयकर' की नई अवधारणा की चर्चा करते हैं जिसमें सरकार गरीबों से कर लेने की बजाय उन्हें धन देती है। प्रस्ताव यह है कि सरकार ऐसे परिवारों को जो एक आय विशेष से नीचे आते हों, इस कमी के एक अंश का भुगतान करे। यह भुगतान आयकर की वापिस अदायगी की तरह एक अधिकार होगा। बिना कोई आमदनी वाला परिवार में व्यक्तियों की संख्या के हिसाब से बुनियादी भत्ता प्राप्त करेगा। बराबर-बिंदु से ऊपर के परिवार आयकर का भुगतान करेंगे।

गरीबी अर्जन क्षमता को मार देती है। नई प्रणाली लोगों को अपना आत्मसम्मान और पहल-शक्ति बनाए रखने में मदद करेगी जिससे लोग दुश्चक्र से बाहर आ सकेंगे। कल्याण-भुगतान की वर्तमान प्रणाली लाभप्रद कार्य-अनुभव के लिए प्रेरित नहीं करती। अधिकतर मामलों में स्त्री-पुरुष मजबूरन निष्क्रिय और खैरात पर आश्रित हो जाते हैं। नकारात्मक आयकर की टोबिन की अवधारणा अर्जन क्षमता न होने की स्थिति में एक अच्छा जीवनस्तर सुनिश्चित करती है। नया दृष्टिकोण आमदनी को सरकारी खजाने से पूरा करने का है। न्यूनतम मजदूरी- भत्ता, कानून, मजदूर-संघों का दबाव, आदि तरीकों से लोगों को मदद नहीं मिलेगी। ❑

(श्री ए. रामलिंगम तमिलनाडु के मन्नमपण्डल में ए.वी.सी. कालेज में अर्थशास्त्र के रीडर हैं।)

(पृष्ठ 18 का शेष)

पोप्पर का कहना था कि विशुद्ध 'तथ्य' होते ही नहीं; सभी तथ्य वास्तव में मूल्य या मान्यताओं से प्रभावित होते हैं। इस कथन का सबसे अप्रिय उदाहरण माना जा सकता है इंटरनेट पर परमाणु बम सहित विभिन्न बम बनाने की विधियों का प्रकाशन। इस तरह के प्रकाशन के समर्थक तर्क करते हैं कि वे केवल तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं, इस बात का समर्थन नहीं कर रहे हैं कि लोग बम बनाने की गतिविधियों में लगें। तथापि, उनके आलोचक इस बात पर जोर देते हैं कि इस तरह की सामग्री पेश करके उन लोगों ने अपनी यह राय स्पष्ट कर दी है कि यह सूचना सार्वजनिक की जानी चाहिए, अब चाहे उन्होंने यह न कहा हो कि किसी व्यक्ति को इस तरह के विस्फोटक बनाने या इस्तेमाल करने चाहिए अथवा नहीं।

इस तरह की बहस के जो भी जटिल परिणाम निकलें (और कई निकल सकते हैं), यह तथ्य है कि 'शिक्षा' और 'राय' के बीच सीमांकन रेखा खींचना कठिन है। हमारी शैक्षिक प्रक्रिया आज यही कर रही है। वर्तमान दृष्टिकोण, जिसमें आदर्श या मूल्योन्मुख शिक्षा को एक पृथक विषय माना जाता है, यह सुझाव देता प्रतीत होता है कि सामान्य शिक्षा 'मूल्य-मुक्त' या 'आदर्श-मुक्त' है। 'मूल्योन्मुख' या 'आदर्श- युक्त' शिक्षा की एक भूमिका है सही, पर वह मुख्य विषय के सहायक के रूप में गौण भूमिका है। अगर हम यह मानते हैं कि 'मूल्य' या 'आदर्श' (विशुद्ध तथ्य नहीं, चाहे वे तकनीकी दृष्टि से कितने ही सही क्यों न हों) किसी भी समाज की आधारशिला हैं तो यह स्थिति अत्यंत तर्कहीन है। दूसरे शब्दों में यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि हमारे सभी शैक्षिक कार्यक्रम हमारे मूल्यों या आदर्शों को दर्शाते हैं। वैज्ञानिक निष्पक्षता के शब्दाडम्बर में उन्हें हम छोड़ नहीं सकते। शिक्षा की समझ की इस कमी के परिणामस्वरूप न केवल मानव-मस्तिष्क, बल्कि मानव-हृदय भी संकुचित हो रहा है। बुद्धि (ज्ञान) और नैतिकता का विकास एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। आधुनिक शिक्षा ने नैतिकता और ज्ञान को अलग कर दिया है और तर्क एवं नैतिकता, मस्तिष्क एवं हृदय का सह-संबंध तोड़ दिया है। जहां इस बात को चुनौती नहीं दी जा सकती कि 'वहां बाहर' निष्पक्ष सत्य विद्यमान है जिसकी खोज करना हमारा कर्तव्य है, वहीं हम इस बात को भी भुला नहीं सकते कि इस सत्य की खोज उस ज्ञानातीत अपरिवर्तनीय नैतिक व्यवस्था के साधनों से ही की जा सकती है जो 'यहां अंदर' विद्यमान हैं। सही शिक्षा मस्तिष्क और हृदय दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं कर सकती। सभ्यता की कड़ी में ये दोनों मिलकर ही महत्वपूर्ण संपर्क बनाते हैं। इस कड़ी की रक्षा करना और इसे बनाए रखना एक अध्यापक का काम है— या कहें कि एक समय हुआ करता था। ❑

(लेखक श्री अनिल विल्सन सेंट जेवियर्स कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रधानाचार्य हैं।)

मध्य प्रदेश का बहुमुखी 'पानी रोको' अभियान

○ जितेन्द्र गुप्त

मध्य प्रदेश के आधे से भी अधिक जिले अक्सर सूखे की चपेट में आते रहते हैं। इसके अनेक कारण हैं। चंचल मानसून की मनमौजी फितरत और कंजूसी के अलावा जंगलों का कटान, बढ़ती आबादी की दिन दूनी होती जरूरतों और पारंपरिक जल स्रोतों की उपेक्षा जल संकट बढ़ाने में सहायक रहे हैं। परिणाम — खेती और चारे की पैदावार में कमी, भू-क्षरण, गरीबी और साधनहीन आबादी का काम की तलाश में गांव से पलायन।

इन सब समस्याओं से जूझने के लिए मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने एक अनूठी समन्वित योजना इस तरह बनाई कि वह निश्चित परिणाम देने में न चूके। इस महत्वाकांक्षी योजना या अभियान का नाम था 'राजीव गांधी जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन मिशन' इसकी कई खूबियां थीं। ग्रामीण विकास संबंधी सभी योजनाओं जैसे — सूखा निवारण कार्यक्रम, रोजगार आश्वासन स्कीम, जलग्रहण क्षेत्र विकास कार्यक्रम को समन्वित करना; मुख्यमंत्री कार्यालय की देख-रेख में जिला मुख्यालय से लेकर ग्राम और सामुदायिक समितियों तक सभी अधिकारियों और कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारियां तय करना; भोपाल से चली धनराशि के नीचे तक पहुंचाने की व्यवस्था और जनता की भागीदारी भी सुनिश्चित की गई जिससे कि सामुदायिक समितियां तथा लाभान्वित होने वाले लोग संरचनाओं की देखभाल करते रह सकें। सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम में स्थानीय जनता की भागीदारी का गंभीर और सार्थक प्रयास इतने बड़े पैमाने पर आजाद भारत के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था।

इस मिशन का श्रीगणेश अक्टूबर, 1994 में हुआ जिसका आरंभिक लक्ष्य था सन 2000 तक 5024 जलग्रहण क्षेत्रों में जल संचय की संरचनाएं बनाना, 12 लाख हेक्टेयर भूमि को सुधारना और कोई 30 लाख हेक्टेयर भूमि को हरा-भरा बनाना। हर जलग्रहण क्षेत्र में मिशन द्वारा काम की अवधि चार वर्ष रखी गई। यह कार्यक्रम 7300 गांवों में चला।

मिशन ने हर क्षेत्र की भू-संरचना और आवश्यकताओं के अनुसार परियोजनाएं बनाईं। इस कार्य में स्थानीय लोगों की पारंपरिक जानकारी का भी उपयोग किया गया। पेयजल की कमी, भू-क्षरण, बंजर भूमि और आदिवासी-अनुसूचित जाति बहुल इलाकों को प्राथमिकता दी गई। पहली बार अर्थव्यवस्था और पर्यावरण की परस्पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए इतने बड़े पैमाने पर विकास कार्य हाथ में लिया गया।

हर क्षेत्र में जलग्रहण क्षेत्र विकास निधि स्थापित की गई जिसमें विभिन्न वर्गों का अंशदान आता है जिसे 'ग्राम वाटरशेड कमेटी' भू और जल संरक्षण की संरचनाओं पर खर्च करेगी।

झाबुआ

राजीव गांधी मिशन के अधीन प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर स्थित आदिवासी बहुल जिला झाबुआ पर अधिक ध्यान दिया गया क्योंकि यह जिला सूखे की सबसे अधिक मार झेलता रहा है। 50-60 साल पहले वनाच्छादित पहाड़ियों वाला झाबुआ अपनी अधिकांश वन संपदा खो चुका था और बंजर भूमि का अनुपात बढ़ता जा रहा था।

बहुमुखी राजीव गांधी मिशन जहां-जहां पहुंचा, वहां पेड़ पनपने लगे, घास पैदा होने लगी, भू-क्षरण थम गया और सिंचित भूमि का क्षेत्रफल बढ़ गया है। कुओं में पानी आ गया है। पेयजल की समस्या हल हो गई है तथा खेती की उपज बढ़ गई है।

1999 में जब मध्य प्रदेश के अनेक हिस्सों में सूखा पड़ा तो पाया गया कि जिन इलाकों में मिशन का काम पूरा हो चुका था उनको जलसंकट से नहीं जूझना पड़ा।

एक पंच, एक तालाब

यह सूखा मध्य प्रदेश प्रशासन को झकझोर गया। राजीव गांधी मिशन कुछ चुने हुए हिस्सों में ही अपना काम पूरा कर पाया था और कई अन्य जगहों पर काम चल रहा था। अन्य स्थानों की जनता मिशन का काम शुरू होने के इंतजार में नहीं बैठी रह सकती थी। अत: मुख्यमंत्री ने एक नया अभियान छेड़ने का संकल्प किया। उनका नारा था: 'एक पंच, एक तालाब।' यानी जिला, ब्लाक और ग्राम स्तर की पंचायती राज संस्थाओं का हर प्रतिनिधि (पंच) अपने कार्यकाल में कम से कम एक तालाब बनवाए या एक पुराने तालाब का उद्धार कराए। इन संस्थाओं के प्रतिनिधियों की संख्या लगभग साढ़े तीन लाख है। प्रदेश में गांवों की संख्या 51.500 है। अगर हर पंच ऐसा कर पाए तो हर गांव पीछे छह से भी अधिक तालाब बन सकते हैं।

मुख्यमंत्री के आह्वान के बाद पंचों ने अपना काम शुरू कर दिया। जून, 1999 से सितंबर 2000 तक पंद्रह महीनों में 500 नए तालाब बनाए गए और 21,319 तालाबों में से 3,412 का पुनरुद्धार हुआ। इस कार्य पर 16 करोड़ रुपये खर्च हुए जिसमें से एक-चौथाई धनराशि स्थानीय लोगों ने जुटाई।

'पानी रोको' अभियान

सन 2000 में इंद्र देवता फिर नाराज हो गए, मानों प्रदेशवासियों और उसकी सरकार की परीक्षा ले रहे हों। राज्य के अधिकतर हिस्से में सूखे की स्थिति रही। जलसंग्रह अभियानों के सकारात्मक अनुभव और सामुदायिक भागीदारी से उत्साहित राज्य प्रशासन ने बहुआयामी 'राजीव गांधी मिशन' को राज्यव्यापी कार्यक्रम बनाने का फैसला कर लिया। फरवरी 3, 2001 से आरंभ होने वाले साहसिक 'ग्राम संपर्क अभियान' को 'पानी रोको' अभियान के रूप में कार्यान्वित करने का निर्देश जारी हो गया।

संपूर्ण राज्य में इस अभियान को लागू करने की गरज से राजीव गांधी जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन मिशन से सरल भाषा में एक मार्गदर्शिका तैयार कराई गई, जिसमें जल संवर्धन और संरक्षण की संरचनाओं, निर्माण की विधि और तकनीक संबंधी ब्योरेवार सुझाव दिए गए हैं। इनको स्थानीय लोग स्थानीय साधनों से अपने खेतों, गांवों और जलग्रहण क्षेत्रों में बना सकते हैं।

3 फरवरी को राज्य के सभी 45 जिलों में प्रशिक्षित सरकारी कर्मचारियों ने सभी गांवों में 'खेत का पानी खेत में' और 'गांव का पानी गांव में' रोकने की सरल विधियों की जानकारी और काम शुरू करने की प्रेरणा देनी आरंभ कर दी। इस प्रकार जल संचय के 'सामूहिक यज्ञ' का श्रीगणेश हो गया।

इस अभियान के लिए रोजगार आश्वासन स्कीम, जवाहर ग्राम स्वरोजगार योजना के लिए निर्धारित राशि के अलावा राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन की 7300 गांवों में जमा निधियों, केंद्रीय और राज्य वित्त आयोगों से मिलने वाली धनराशि के अलावा यूनीसेफ से प्राप्त रकम का एक हिस्सा खर्च करने की व्यवस्था भी की गई। पूर्ववर्ती अभियानों की तरह इस कार्यक्रम के लिए भी सामुदायिक अंशदान प्रचुर मात्रा में मिला।

सरकारी अधिसूचना के अनुसार फरवरी से जून 2001 के बीच पांच महीने में उपलब्धियों की सूची इस प्रकार रही:

अतिरिक्त जल संग्रहण क्षमता-9487.62 लाख घन मीटर, मिट्टी की खुदाई-1,289.04 लाख घन मीटर, नए तालाबों का निर्माण-11,690 यानी हर दिन 75 तालाबों के हिसाब से पांच माह तक नए तालाब बनते रहे; 16,213 पुराने तालाबों की सफाई की गई; 14,385 नए कुएं खोदे गए और 32,403 जलसंग्रह संरचनाएं खेतों में बनीं; 79,617 कुओं का जीर्णोद्धार हुआ; 1,14,035 कुओं और 50,698 नलकूपों को रिचार्ज किया गया। कुल मिलाकर जल संग्रह की छोटी-बड़ी 7,06,334 संरचनाएं बनीं।

इसके अलावा खेतों में पानी रोकने के लिए 6,940 किलोमीटर बन्धान और जंगलों और पड़ती जमीन पर पानी रोकने के लिए 7,132 किलोमीटर कंटूर ट्रेंच बनाए गए।

मध्य प्रदेश सरकार को कम से कम 10-12 वर्ष तक बहुमुखी पानी रोको अभियान की आरंभिक उपलब्धियों के लिए स्थानीय सामुदायिक प्रबंधन संस्थाओं को सहारा देते रहना होगा, क्योंकि सदियों से उपेक्षित गांवों में स्थानीय संस्थाओं को पूर्णत: स्वायत्त और मजबूत होने में अनेक बाधाएं आती हैं। जाति प्रथा, आर्थिक विषमता आदि तत्व बाधक साबित हो सकते हैं।

कैसी बाधाएं आ सकती हैं यह मध्य प्रदेश सरकार को अच्छी तरह मालूम होगा। उदाहरण के लिए ग्राम स्वराज अधिनियम के तहत जलसंग्रह संरचनाओं का स्वामित्व ग्राम सभाओं को सौंपने की व्यवस्था है। उनको संरचनाओं के रख-रखाव के लिए लाभान्वित होने वाले लोगों की समितियां बनानी हैं। राजीव गांधी मिशन के कामकाज को समन्वित करने वाले गोपालकृष्णन के शब्दों में 'इसी तरीके से जल संरक्षण सामाजिक आंदोलन बन सकता है।' लेकिन मार्च, 2001 में ग्राम पंचायतों के सरपंचों ने विशाल रैली निकालकर ग्राम सभाओं की जिम्मेदारी सौंपने का विरोध किया। इसलिए लगता है कि ग्राम स्वराज अधिनियम को लागू करने में समय लगेगा। ❑

(लेखक आर्थिक विषयों के स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

जहां चाह, वहां राह

*'**जहां चाह, वहां राह**' नामक अपने इस नए स्तंभ द्वारा हम ग्रामीण विकास के कार्य से जुड़ी सफलता की उन रोचक कहानियों के प्रकाशन के इच्छुक हैं जिन्हें पढ़कर अन्य क्षेत्रों के लोग भी प्रेरणा ग्रहण कर सकते हों। अत: अपने आस-पास के किसी भी कस्बे, गांव, तहसील अथवा जिले में चल रहे निजी अथवा संस्थागत कार्यों के संबंध में हमें लिखें जो सामान्य से हटकर, यानी अनुपम किस्म के हों और जिनके द्वारा पूरा समुदाय लाभान्वित होता हो।*

चयनित रचनाओं को 'योजना' के इस स्तंभ में स्थान दिया जाएगा। इसके लिए मानदेय का भी प्रावधान है। लेख अधिकतम 1000-1500 शब्दों का हो। लेख की दो टंकित प्रतियां स्वपता लिखे, टिकट लगे लिफाफे के साथ भेजें ताकि अस्वीकृति की स्थिति में वे आपको लौटाई जा सकें।

रचनाओं के चयन में 'संपादक मंडल' का निर्णय अंतिम होगा।

डायबिटीज—आत्म नियंत्रण ही उपचार है

○ आर.बी.एल. गर्ग

डायबिटीज आधुनिक सभ्यता का रोग है। यह रोग किसी को भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति जो मोटे हैं तथा ढेर सारा परिष्कृत आहार (वसा और कार्बोहाइड्रेट की अधिकता) खाते हैं और जिनकी जीवन-शैली स्थानबद्ध (बैठे-बैठे कार्य करने वाली) है तथा जो न तो शारीरिक श्रम करते हैं, न यथोचित व्यायाम और विश्राम, वे अंततः डायबिटीज के शिकार हो जाते हैं। डायबिटीज एपीडैमियोलॉजी स्टडी-ग्रुप द्वारा किए गए हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार 8 में से एक वयस्क शहरी-भारतीय डायबिटीज से पीड़ित है। उदाहरणस्वरूप बैंगलोर, चेन्नई, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई तथा हैदराबाद जैसे महानगरों से चुने गए 11,216 व्यक्तियों के अब तब के सबसे बड़े इस अध्ययन से पता लगता है कि इनमें से 13.2 प्रतिशत प्रत्यक्षतः डायबिटीज के शिकार थे। इसके अतिरिक्त 14.2 प्रतिशत ऐसे थे जिनकी ग्लूकोज सहनशीलता समाप्त हो चुकी थी, अर्थात् कमोबेश वे भी इस रोग के शिकंजे में आ रहे थे।

एम.बी. डायबिटीज सेन्टर, चेन्नई के एक डाक्टर के अनुसार भारत में डायबिटीज पीड़ितों की अनुमानित संख्या 4 करोड़ है, जिनमें आधे से अधिक लोगों को यह नहीं पता कि वे इस रोग से पीड़ित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के हाल के एक प्रतिवेदन के अनुसार तीसरी दुनिया में डायबिटीज संक्रामक अनुपात में बढ़ रही है, जिसके घातक परिणाम बढ़ते हुए हृदय-रोग, गुर्दे के रोग, तंत्रिका विकृति और अंधापन के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहां तक कि यदि कोई डायबिटीज-पीड़ित व्यक्ति अपने रोग के प्रति लापरवाह रहता है तो वह पांवों के विगलन तक का शिकार हो सकता है।

स्वास्थ्य संकटों में सबसे अधिक घातक 'डायबिटीज' मानी जाती है क्योंकि यह मौन रहते हुए मनुष्य के प्राण ले लेती है। आरंभिक स्थिति में यह रोग अलाक्षणिक ही रहता है। रोगी को पता नहीं चलता कि वह रोग से पीड़ित है। बार-बार पेशाब जाना, बार-बार पानी पीना, अत्यधिक थकान या किसी घाव का न भरना, आदि लक्षण बाद में प्रकाश में आते हैं जब रक्त में ग्लूकोज की मात्रा काफी बढ़ जाती है। अज्ञानता के कारण रोगी को इसकी भयावहता का अहसास तब तक नहीं होता जब तक कि वह पूरी तरह रोग के चंगुल में नहीं फंस जाता। डायबिटीज से संबंधित स्वास्थ्य संबंधी पेचीदगियां 10 से 20 वर्ष के बीच उजागर होती है और तब तक जीवन की गुणवत्ता का ह्रास आरंभ हो चुका होता है। कमजोर स्मरणशक्ति, अत्यधिक थकान, अनिद्रा, एकाग्रता का अभाव और चिड़चिड़ापन रोगी जीवन की गुणवत्ता का क्षय कर देते हैं और धीरे-धीरे वह अन्य भयानक रोगों के चंगुल में फंस जाता है।

डायबिटीज और हृदय-रोगों का गहरा सह-संबंध है। हाल में किए गए 6,597 डायबिटीज के शिकार दक्षिण भारतीयों के एक अध्ययन से पता चलता है कि उनमें से 17.8 प्रतिशत इश्चेमिक हृदय-रोग (आईएचडी) से पीड़ित थे। इंग्लैण्ड में हुए एक सर्वेक्षण से इस तथ्य की पुष्टि होती है जिसमें पाया गया कि लंदन में रह रहे भारतीय मूल के डायबिटीज रोगियों में एक बड़ा प्रतिशत हृदय रोगियों का भी था। एस्कॉट हार्ट हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च सेन्टर, नई दिल्ली का एक और अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करता है जिसके अनुसार हृदय-रोग के उपचार के लिए आए 35 प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों का डायबिटीज का इतिहास था।

डायबिटीज से ग्रसित व्यक्ति की अंधेपन की संभावनाएं भी अधिक होती हैं। अमेरिका में 55 वर्ष से कम आयु के डायबिटिक्स की संख्या एक करोड़ के लगभग है, जिनमें से अधिसंख्य अंधेपन की ओर बढ़ रहे हैं। मदुरई स्थित अरविन्द आई हॉस्पिटल के हाल के एक अध्ययन के अनुसार डायबिटीज के शिकार 1863 व्यक्तियों में से जो पहली बार आंख परीक्षण के लिए

आए थे, 37 प्रतिशत व्यक्ति डायबिटीज-संबंधी अंधेपन के शिकार पाए गए। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद, नई दिल्ली के आई सेन्टर (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सेन्टर ऑफ ऑप्थेल्मिक साइंस) में प्रतिमाह 1500 डायबिटीज-पीड़ित व्यक्ति अपनी आंखों के परीक्षण के लिए आते हैं। ये सभी अध्ययन इस बात की ओर इशारा करते हैं कि डायबिटीज अंधेपन के लिए एक महत्वपूर्ण उत्तरदायी घटक है। डायबिटीज अन्य पेचीदगियों के लिए भी उत्तरदायी हैं, जैसे नपुसंकता, गुर्दे के रोग तथा गैंगरीन।

स्वास्थ्य विशेषज्ञ डायबिटीज के लिए मोटापे को सबसे महत्वपूर्ण घटक मानते हैं। बहुत से व्यक्ति दिन में कई बार वह सब खा जाते हैं जो न केवल उन्हें मोटा और भद्दा बनाता है अपितु उनके रक्त-ग्लूकोज स्तर को अनियंत्रित करता है। 'क्लीनिकल कार्डियोलाजी' के हाल के अंक में प्रकाशित एक शोधपूर्ण लेख में डॉ. स्कॉट राइट ने यह माना है कि मोटापे का हृदय-रोग से संबंध भले ही विवादास्पद हो, लेकिन मोटे व्यक्ति का देर-सबेर डायबिटीज की गिरफ्त में आना एक हकीकत है। साफ्ट ड्रिंक्स, ब्रेड, सफेद चावल, आलू, घी, मिठाई, मक्खन, आइसक्रीम, चाकलेट, तला-भुना खाद्य आदि मोटापा ही नहीं, रक्त-ग्लूकोज भी बढ़ाते हैं। मीठे पेय या खाद्य में निरर्थक कैलेरीज विद्यमान रहती हैं जो शरीर के लिए अनावश्यक हैं। मीठा आहार (या पेय) हमारी ऊर्जा में अभिवृद्धि तो करता है, लेकिन यह शक्ति क्षणिक होती है। मात्र 1 घंटे बाद हमारा रक्त-ग्लूकोज इतना कम हो जाता है कि हम कमजोर महसूस करते हैं तथा तब भूख लगती है। दूसरे शब्दों में अनुपयोगी शर्करायुक्त अतिरिक्त कैलेरीजयुक्त नियमित आहार डायबिटीज का प्रमुख कारण है। यह सच है कि हमारे संकलित खाद्य की 60 प्रतिशत कैलोरी बिना कुछ किए स्वत: समाप्त हो जाती है लेकिन शेष 40 प्रतिशत के लिए शारीरिक व्यायाम आवश्यक है। जब हमें कार्यालय (या घर में) में बैठे रहकर ही कार्य करना पड़ता है तो शेष कैलेरीज का एक अंश मोटापे में वृद्धि ही नहीं करता, वह अंतत: डायबिटीज का कारण भी बन बैठता है।

'तनाव' डायबिटीज का एक अन्य महत्वपूर्ण घटक है। शहरी जीवन की समस्याएं, भाग-दौड़, स्पर्धा आदि घटक आग में घी का काम करते हैं। न तो पर्याप्त विश्राम हो पाता है और न यथोचित व्यायाम। यही कारण है कि गांवों की तुलना में शहरों में डायबिटीज का अनुपात अधिक है। गांवों में तुलनात्मक रूप से शारीरिक श्रम अधिक हो जाता है और विश्राम भी। हाल के एक शोध में धूम्रपान को डायबिटीज का प्रत्यक्ष कारण तो नहीं माना गया, लेकिन यह बात अवश्य प्रकाश में आई कि अधूम्रकारी की तुलना में धूम्रकारी डायबिटीज के शिकंजे में जल्दी आते हैं। इंग्लैंड, स्काटलैंड और वेल्स के 7500 अधेड़ शहरियों के एक अध्ययन से पता चलता है कि अधूम्रकारियों की तुलना में धूम्रकारियों के डायबिटीज की गिरफ्त में आने की 70 प्रतिशत अधिक संभावना होती है।

क्या करें?

डायबिटीज को 'साइलेंट किलर' कहा गया है क्योंकि प्राथमिक स्थिति में इस रोग का पता नहीं चल पाता। बाद में जब इसके लक्षण (बार-बार पेशाब जाना, अत्यधिक प्यास लगना, बेहद थकान आदि) प्रकाश में आते हैं तो रोग बढ़ चुका होता है। अत: ऐसे परिवारों में जहां पिछली 2 पीढ़ियों में किसी परिवारजन में डायबिटीज देखी गई हो, सबसे महत्वपूर्ण है कि 20-25 वर्ष की आयु के मध्य पहला स्क्रीनिंग परीक्षण और उसके 1 या 2 वर्ष बाद नियमित परीक्षण कराएं। इसके लिए ग्लूकोज टालरेंस परीक्षण श्रेष्ठ माना गया है तथा दूसरा भोजन के 1.30 घंटे के पश्चात रक्त ग्लूकोज की जांच। मधुमेह के पता चलने की स्थिति में अविलंब उपचार आरंभ किया जाना चाहिए। यह उपचार मधुमेह (या रक्त-ग्लूकोज) को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक है और इसलिए आहार, व्यायाम, विश्राम आदि पर भी समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। वास्तव में देखा जाए तो उपचार कारगर तभी होता है जब न केवल आहार उपयुक्त हो अपितु समुचित व्यायाम भी किया जाए।

आहार कैसा हो?

डायबिटिक का आहार पोषक और सुपाच्य होना चाहिए। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि किसी भी रूप में शक्करयुक्त आहार रोगी के लिए घातक बन सकता है। अत: मीठे पेय (चाय, साफ्ट ड्रिंक्स या मीठा खाद्य, किसी भी तरह की मिठाई, आइसक्रीम, चाकलेट आदि) इस रोग में वर्जित हैं। रेशेयुक्त ताजा फल लिए जा सकते हैं। हरा शाक, पत्तेदार हरी सब्जी, चोकरयुक्त आटे से बनी रोटियां ली जानी चाहिए। शराब, धूम्रपान, ब्रेड-बटर तथा वसा से यथासंभव बचना चाहिए।

व्यायाम कैसा और कितना हो?

प्रात:कालीन दीर्घ भ्रमण श्रेष्ठ व्यायाम है, लेकिन कदाचित इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। यौगिक क्रियाएं डायबिटीज में लाभकारी सिद्ध हुई हैं। ऐसे योगासन के साथ-साथ 'मस्त्रिका' तथा 'प्राणायाम' डायबिटीज में विशेष लाभकारी सिद्ध हुए हैं। योगासन कोई जिमनास्टिक नहीं है। इन्हें योग्य व्यक्ति की निगरानी में किया जाना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। प्रात:काल 1 घंटे की गई योगक्रियाएं निस्संदेह रोग मुक्ति दिला सकती हैं। यौगिक क्रियाओं का प्रभाव शनै: शनै: 1 माह के पश्चात दिखाई पड़ता है। यदि 'योग' हर ऐसे व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन जाए तो वह न केवल दीर्घायु हो सकता है अपितु जीवन की गुणवत्ता में भी अपूर्व सुधार ला सकता है। ❑

विकास समाचार

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा कृत्रिम पांव विकसित

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र ने पॉलियूरेथेन का एक कृत्रिम पांव विकसित किया है जो विकलांगों के लिए वरदान सिद्ध होगा। कृत्रिम पांव बनाने की यह नई प्रौद्योगिकी लोकप्रिय और पारंपरिक 'जयपुर पांव' प्रौद्योगिकी से बेहतर है क्योंकि इससे बना हुआ पांव बहुत हल्का और अधिक टिकाऊ होता है।

पॉलियूरेथेन के इस पांव का तिरुअनंतपुरम के सरकारी मेडिकल कॉलेज में व्यापक परीक्षण किया जा चुका है और इसका इस्तेमाल करने वाले लोगों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के अनुसार इसमें कई सुधार भी किए गए हैं।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने इस नई प्रौद्योगिकी को जयपुर के एक सामाजिक संगठन, 'भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति' को मुफ्त उपलब्ध कराया है, जिससे देश में गरीबों और जरूरतमंदों के फायदे के लिए बड़ी मात्रा में कृत्रिम पांव तैयार करना संभव हो सकेगा।

विशाखापत्तनम इस्पात संयंत्र द्वारा इस्पात निर्यात

इस्पात मंत्रालय के तहत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम राष्ट्रीय इस्पात निगम लि. के विशाखापत्तनम इस्पात संयंत्र ने इस वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही के दौरान 73,324 टन इस्पात का निर्यात किया। संयंत्र ने वर्ष 2001-02 के दौरान 2,27,800 टन इस्पात का निर्यात किया था। संयंत्र का वर्ष 2002-03 के दौरान 170,000 टन इस्पात के निर्यात का लक्ष्य है।

वर्ष 2001-02 के दौरान ईकाई ने 31.2 लाख टन तप्त धातु, 27.3 लाख टन कच्चा इस्पात, 24.11 लाख टन बिक्रीयोग्य इस्पात तथा 3.63 लाख टन बिक्री के लिए लौह अयस्क का उत्पादन किया। वर्ष 2002-03 के दौरान इन क्षेत्रों में क्रमश: 34 लाख, 30 लाख, 26.75 लाख और 3.74 लाख टन का उत्पादन किए जाने का अनुमान है।

गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को खाद्यान्न आवंटन

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सरल बनाने और परिवार स्तर पर खाद्य सुरक्षा में वृद्धि की दृष्टि से भारत सरकार ने जून, 1997 में गरीबों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की थी। खाद्यान्न आवंटन, जो शुरू में 10 किलोग्राम प्रति परिवार प्रति माह था, पहली अप्रैल, 2000 से बढ़ाकर दुगुना अर्थात 20 किलोग्राम और जुलाई, 2001 से और बढ़ाकर 25 किलोग्राम प्रति परिवार प्रति माह कर दिया गया था। पहली अप्रैल, 2002 से गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को 35 किलोग्राम प्रति परिवार प्रति माह खाद्यान्न आवंटित किया जा रहा है। गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों के लिए केन्द्रीय निर्गम मूल्य, जो गेहूं के लिए 4.15 रुपये प्रति किलोग्राम और चावल के लिए 5.65 रुपये प्रति किलोग्राम निर्धारित किया गया था, पिछले दो वर्षों से अपरिवर्तित रहा है।

'अंत्योदय अन्न योजना' सभी राज्यों/संघ-राज्य क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही है। यह योजना 25 दिसम्बर, 2001 को प्रधान मंत्री द्वारा शुरू की गई थी ताकि एक करोड़ निर्धनतम परिवारों की सेवा की जा सके। इस योजना के तहत गेहूं के लिए 2 रुपये प्रति किलोग्राम और चावल के लिए 3 रुपये प्रति किलोग्राम की अत्यधिक राजसहायता दरों पर 35 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति परिवार प्रति माह दिया जा रहा है।

निजी पत्तनों से रेलों का जोड़ा जाना

रेल मंत्रालय का प्रमुख निजी पत्तनों सहित सभी प्रमुख पत्तनों के लिए रेल-संपर्कों को सुदृढ़ करने का प्रस्ताव है।

पीपावाव पत्तन के मामले में पीपावाव रेल निगम लिमिटेड नामक एक संयुक्त उद्यम कंपनी बनाई गई है, जिसमें रेल मंत्रालय और गुजरात पीपावाव पोर्ट लिमिटेड के बीच समान इक्विटी भागीदारी है। इस कंपनी को सुरेन्द्रनगर-पीपावाव बड़ी लाइन संपर्क परियोजना का कार्य पूरा करना है। 270 कि.मी. लंबी इस लाइन की लागत नवीनतम अनुमान के अनुसार 373 करोड़ रुपये आने की आशा है, जिसमें निर्माण के दौरान ब्याज, आकस्मिक और चालू किए जाने से पहले के खर्च शामिल हैं।

मुंदरा पत्तन के मामले में आदीपुर से मुंदरा के बीच 54 कि.मी. लाइन का गुजरात अदानी पत्तन लि. द्वारा अपनी लागत पर पहले ही निर्माण किया जा चुका है और यह लाइन पहले ही परिचालन में है।

भाषाओं की अनेकता हमारी एकता का सूत्र

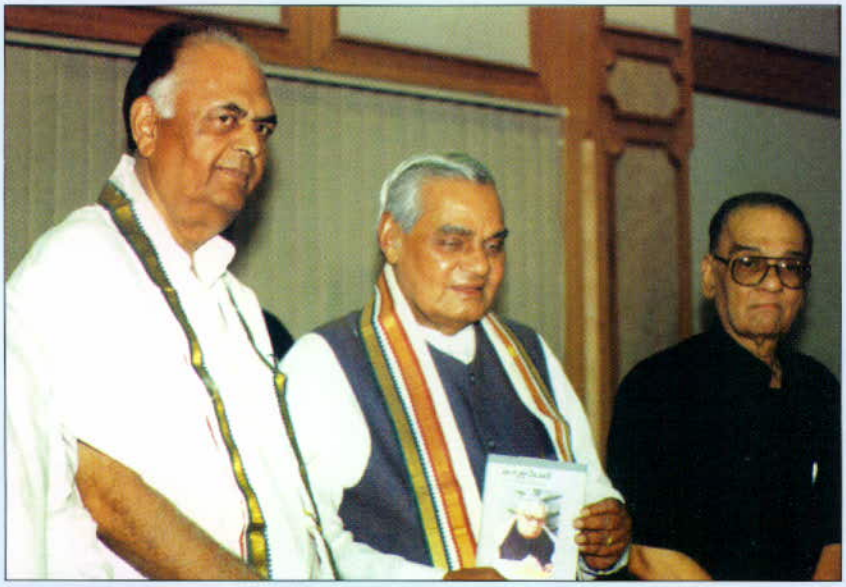

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के कविता-संग्रह के तमिल अनुवाद के विमोचन समारोह में (बाएं से दाएं) योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री के.सी. पंत, प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा योजना आयोग के सदस्य श्री के. वेंकटसुब्रह्मण्यम्

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने घोषणा की है कि केन्द्र सरकार किसी एक भारतीय भाषा में लिखे गए ग्रंथों के अन्य भाषाओं में अनुवाद को हर संभव प्रोत्साहन देगी। अपने कविता-संग्रह 'वाजपेयी 31' के तमिल अनुवाद का हाल ही में नई दिल्ली में आयोजित एक समारोह में विमोचन करते समय श्री वाजपेयी ने कहा कि हमारी नदियों की भांति हमारी भाषाओं की अनेकता भी हमारी एकता को सुदृढ़ करती है। राष्ट्रकवि श्री सुब्रह्मण्य भारती को उद्धृत करते हुए श्री वाजपेयी ने कहा कि हमारी संस्कृति और हमारी भाषाएं वह आधार है जो हमें एक करता है; विभाजित नहीं। उन्होंने कहा कि हिन्दी और तमिल भाषाओं के बीच एक स्वाभाविक निकटता है जो गंगा और कावेरी नदियों के पवित्र संबंध जैसी है।

श्री वाजपेयी ने कहा कि साहित्य और संस्कृति ऐसे क्षेत्र हैं जिनके माध्यम से लोगों के आपसी संबंधों को गहराई प्रदान की जा सकती है। उत्कृष्ट साहित्यिक पुस्तकों का एक भारतीय भाषा से दूसरी भाषाओं में अनुवाद इस कार्य में प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

समारोह की अध्यक्षता योजना आयोग के उपाध्यक्ष, श्री के.सी. पंत ने की। कविताओं का तमिल में अनुवाद करने वाले श्री के. वेंकटसुब्रह्मण्यम् के कार्य की प्रशंसा करते हुए श्री पंत ने कहा कि योजना आयोग में ऐसे समर्थ व्यक्तियों की कमी नहीं है।

'वाजपेयी 31' का तमिल भाषा में अनुवाद करने वाले डा. सुब्रह्मण्यम् एक प्रसिद्ध शिक्षाविद् और योजना आयोग के सदस्य हैं। उनके कई कार्य सराहनीय रहे हैं। योजना आयोग द्वारा जारी 'एक सुविज्ञ समाज के रूप में भारत का विकास' नामक दृष्टिकोण-पत्र भी उन्हीं के प्रयासों का फल है जो उन्होंने प्रधानमंत्री के तत्कालीन वैज्ञानिक सलाहकार और वर्तमान में हमारे माननीय राष्ट्रपति, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के साथ मिलकर तैयार किया था।

राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने भी श्री वेंकटसुब्रह्मण्यम् के तमिल अनुवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा की। तमिल कविता के शिखर-पुरुष श्री वैरामुथ्थु की उपस्थिति ने समारोह में चार चांद लगा दिए। महान कवि मैथिलीशरण गुप्त के पदों से अलंकृत अपने भाषण में श्री वैरामुथ्थु ने कहा कि आज भारत का सौभाग्य इस बात में नहीं है कि उसका प्रधानमंत्री एक कवि है अपितु इस बात में है कि एक कवि उसका प्रधानमंत्री है।

श्री कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य ने भी अपने बधाई-संदेश द्वारा इस कार्य की सराहना की है।

रजि. सं. डी. एल. 12036/2002 तथा डाक व्यय की अदायगी के साथ डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L. 12036/2002 Licenced to post with payment at RMS, Delhi.

पंजी सं. 951/57
R.N. 951/57

हे शिक्षितों! कुछ कर दिखाओ

हे शिक्षितों! कुछ कर दिखाओ, ज्ञान का फल है यही,
हो दूसरों का लाभ जिससे, श्रेष्ठ विद्या है वही।
संख्या तुम्हारी अल्प है, उसको बढ़ाओ शीघ्र ही,
नीचे पड़े हैं जो उन्हें ऊपर चढ़ाओ शीघ्र ही।
अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेमपूर्वक हित करो,
उनकी समुन्नति से उन्हें उत्साहयुत परिचित करो।
ज्ञानानुभव से तुम न निज साहित्य को वंचित करो,
पाओ जहां जो बात अच्छी शीघ्र ही संचित करो।
सबमें प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में,
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम सब क्लेश में।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नहीं सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।
जब तक अविद्या का अंधेरा हम मिटावेंगे नहीं,
जब तक समुज्जवल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं।
तब तक भटकना व्यर्थ है सुख-सिद्धि के संधान में,
पाए बिना पथ पहुंच सकता कौन इष्ट स्थान में।

—मैथिलीशरण गुप्त ('भारत भारती' में)

सुरेश चोपड़ा, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001
से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित। दूरभाष : 3378626, 3379686
कार्यकारी संपादक : अंजनी भूषण